घूंघट के पट खोल

प्रवचन-क्रम

1. घाट घाट में वह साईं रमता..2
2. मन मस्त हुआ तब क्यों बोले..21
3. मन रे जागत रहिए भाई...42
4. भीजै दास कबीर...57

घूंघट के पट खोल
पहला प्रवचन

घाट घाट में वह साईं रमता

सूत्र

घूंघट का पट खोल रे, तो को पीव मिलेंगे।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे।।
धन जोवन को गरब न कीजै, झूठा पचरंग बोल रे।
सुन्न महल में दियना बारिले, आसन सों मत डोल रे।।
जागू जुगुत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
कह कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।।

कबीर के पद पहले, कुछ बातें समझ लें।
एक तो--और अत्यंत आधारभूत--कि परदा आपकी आंख पर है, परदा परमात्मा पर नहीं। और परदा आपने ही डाला है, किसी और ने नहीं। किसी और ने डाला होता तो आप उठाने में समर्थ न हो सकते थे; फिर कोई और ही उठाता। और पर्दा अगर परमात्मा के ऊपर होता, तो भी आप उठाने में समर्थ न हो सकते थे। क्योंकि परमात्मा विराट है, उसका परदा भी विराट होता, आपकी सामर्थ्य के बाहर होता। पर्दा आपकी आंख पर है, और आपने ही डाला है। यह पहली प्राथमिक बात समझ लेना चाहिए। इसलिए कबीर घूंघट का उपयोग करते हैं।
घूंघट व्यक्ति स्वयं ही डालता है और अपनी ही आंख पर डालता है। और यही आसान भी है। क्योंकि अपनी आंख छिप गई कि सब छिप गया। हिमालय को छिपाना हो तो बहुत बड़े पर्दे की जरूरत पड़े। छोटा सा घूंघट, आंख बंद हो गई, हिमालय खो गया। सरल भी यही है। फिर खुद ने ही डाला है; इसलिए जब चाहें, जब मर्जी हो, उठा लें। कोई रुकावट भी नहीं है, कोई बाधा भी नहीं है--स्वयं के अतिरिक्त। इस बात को जितना गहरा उतर जाने दें भीतर, उतना ही अच्छा है। क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं, सत्य के ऊपर पर्दा है; तब तो यात्रा बहुत कठिन हो जाएगी। कमजोर आदमी कर भी पाएगा, इसकी कोई आशा रखनी उचित नहीं है। और सत्य के ऊपर पर्दा हो, तो तुम लाख उपाय करो, उठा कैसे पाओगे! और सत्य के ऊपर पर्दा हो तो एक बार किसी ने उठा दिया तो सभी के लिए उठ जाएगा। विज्ञान और धर्म का फर्क और फासला यही है।
आइंस्टीन एक सत्य को खोज लेते हैं, तो फिर हर पीछे आनेवाले वैज्ञानिक को, विज्ञान के विद्यार्थी को वह सत्य नहीं खोजना पड़ता--पर्दा उठ गया! फिर तो आप पढ़ लें किताब में, काफी है। जो श्रम आइंस्टीन को वर्षों करना पड़ा होगा, एक साधारण से विद्यार्थी को घंटों करना पड़ता है।
बुद्ध ने पर्दा उठा दिया, कबीर ने पर्दा उठा दिया, अब आपको करने की जरूर ही क्या है? जरा सा समझ लेना है, बात खतम हो गई। विद्यालय में पढ़ाई हो सकती है--विज्ञान की; धर्म की नहीं। क्योंकि बुद्ध ने जो पर्दा उठाया, वह अपनी आंख का पर्दा था। वह कोई सत्य का पर्दा नहीं उठा दिया था; नहीं तो सभी के लिए उठ जाता, फिर अज्ञानी कोई होता ही नहीं जगत में। फिर जैसे आइंस्टीन का सिद्धांत किताब में लिख जाता है, लोग पढ़ लेते हैं, खोजने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, वैसे ही बुद्ध का सिद्धांत भी किताब में लिख जाता।
यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि शास्त्र विज्ञान में हो सकता है, धर्म में नहीं। धर्म में कैसे शास्त्र होगा? दूसरे के उठाए तुम्हारा पर्दा तो उठेगा नहीं। और दूसरे ने जो देखा है, वह तुम्हारा दर्शन कैसे बनेगा? तुम्हारी आंख पर जब तक पर्दा है, बुद्ध कितना ही पर्दा उठा दें, कुछ भी न उठेगा। वह उनकी आंख का पर्दा है। इसलिए धर्म में कोई परंपरा नहीं निर्मित हो सकती। ट्रेडीशन धर्म की हो ही नहीं सकती। और दुख की यही बात है कि उसकी बड़ी परंपरा बन गई है।
शास्त्र धर्म का हो ही नहीं सकता। लेकिन धर्म शास्त्र है। धर्म दूसरे
से सीखा ही नहीं जा सकता, उसे खुद ही खोजना पड़ता है। लेकिन फिर भी हम दूसरे से सीखते हैं। और इसलिए सब झूठ हो गया है। धर्म के आस-पास जितना झूठ इकट्ठा

हो गया है, उतना किसी चीज के आस-पास झूठ नहीं है। क्या कारण होगा? और धर्म, जो की सत्य की खोज है, उसके आस-पास इतना झूठ क्यों इकट्ठा हो गया? इतने शास्त्र, इतने सिद्धांत, इतने दर्शन, इतनी धारणाएं, इतने प्रत्यय धर्म के आस-पास क्यों इकट्ठे हो गए? --इस मौलिक बात को भूल जाने के कारण कि पर्दा घूंघट है, तुम्हारी आंख पर है। हर आदमी को फिर से उठाना पड़ेगा। और हर आदमी को नये सिरे से उठाना पड़ेगा। किसी दूसरे के उठाए तुम्हें कुछ फर्क न पड़ेगा।
बुद्ध जाएंगे, देख लेंगे, खो जाएंगे--उनका दर्शन भी उनके साथ खो जाएगा; उनकी दृष्टि भी उनके साथ खो जाएगी। तुम जागोगे, देखोगे, पहचानोगे, तुम्हारे जीवने में अनहद आनंद का ढोल बजेगा; लेकिन किसी और को सुनाई नहीं पड़ेगा, तुमको ही सुनाई पड़ेगा। तुम्हारे जीवन में अनंत प्रकाश का अवतरण होगा, लेकिन तुम्हारे पड़ोस में भी कोई बैठा हो, उसको पता नहीं चलेगा। पत्नी को भी पता नहीं चलेगा कि पति के हृदय में प्रकाश की किरण उतरी। बेटे को पता नहीं चलेगा की बाप जाग गया तुम्हारे चारों तरफ लोग बैठे रहें, किसी को शंका भी न होगी कि तुम जाग गए। क्योंकि पर्दा तुमने अपनी आंख का उठाया है, उनकी आंखों का नहीं। और दूसरे की आंख का पर्दा उठाया ही नहीं जा सकता। यह पर्दा बाहरी नहीं है--यह दूसरी बात समझ लें। यह पर्दा बाहरी होता
तो कोई झटक कर दूसरा भी उठा देता यह नींद बाहर की होती तो हिला-डुला कर कोई भी तुम्हें जगा देता। यह नींद भीतर की है। कितना ही हिलाओ-डुलाओ, शरीर ही हिलेगा-डुलेगा, तुम्हारी चेतना नहीं। और यह पर्दा भीतर है। यह घूंघट साधारण घूंघट नहीं है, जो स्त्रियां की आंखों पर पड़ा रहता है। उसे तो कोई भी उठा सकता है। यह पर्दा, यह घूंघट भीतर की आंख पर है, जिसको हम तीसरी आंख कहते हैं।
यह इतने भीतर है कि दूसरा तो प्रवेश ही नहीं कर सकता। तुम ही जब चाहोगे, तुम ही जब भरोगे आतुरता से, तुम्हारी ही अभीप्सा जब तुम्हें आंदोलित करेगी, तुम ही जब जीवन की व्यर्थता को देखोगे, और तुम्हें जब देखोगे इस पर्दे के कारण कितनी दीवालों से टकराना पड़ता है, सब तरफ से जीवन लहूलुहान हो गया है; इस पर्दे के कारण द्वार मिलता ही नहीं; द्वार भी दीवाल हो जाती है; इस पर्दे के कारण जीवन में सिवाय कलह के, दुख के नर्क के, कुछ और नहीं होता, ऐसा क्षण आता ही नहीं जब तुम कह सको, आनंद भयो रे! ... एक क्षण भी जीवन में ऐसा नहीं आता, जब तुम नाच उठो और तुम कहो, धन्यभागी हूं कि जो भी मैंने दुख भोगे, वह इस एक क्षण मिले आनंद के लिए पर्याप्त थे; कोई हर्जा नहीं हुआ, कोई नुकसान नहीं हुआ। खूब पा लिया मैंने, वे दुख ना कुछ थे। अगर उतने दुख फिर झेलने पड़े तो मैं तैयार हूं इस एक क्षण आनंद के लिए।... लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं होता।
नहीं होता इसलिए कि न तो तूफान चल रहा हो बाहर तो तुम्हारा घूंघट हट सकता है, न आग लग जाए बाहर तो तुम्हारा घूंघट जल सकता है। भूल-चुक से भी, दुर्घटना में भी, तुम्हारा घूंघट हिलेगा नहीं।... भीतर है। और इन आंखों पर नहीं है जिनसे तुम देख रहे हो। भीतर की आंख पर है।
एक भीतर की दृष्टि है, उसके खुलते ही सारा जीवन बदल जाता है।
एक बाहर की दृष्टि है, वह खुली भी रहे तो भी काम चलता है--जीवन नहीं बदलता। वह बंद भी हो जाए तो भी काम चल जाता है। अंधा भी काम चला लेता है; आंख वाले भी काम चला लेते हैं। इन आंखों से गहरी भी आंख है, वही खुलती है, जब हम किसी को... व्यक्ति को कहते हैंः बुद्ध हो गया, जिन हुआ, जागा, होश पाया, और तब सब रूपांतरित हो जाता है! क्योंकि जब तुम भीतर जागते हो तो तुम्हारी सारी सृष्टि बदल जाती है। तुम जो देखते हो, तुम्हारे कारण ही देखते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन को एक रात पकड़ा गया।... काफी पी गया था। काफी झूम झटक की सिपाही से, गाली गलौज की। मगर वह उसे घसीट कर कोतवाली ले गया। कोतवाली में भी घुसा तो बहुत नाराज था और कहा कि यह क्या बदतमीजी है, मुझे किस लिए यहां लाया गया है? वह जो इंस्पेक्टर था कोतवाली में, उसने कहा, शराब के लिए लाया गया है। उसने कहा, अरे, तब बात और! प्रसन्न हो गया।... फिर कब शुरू करेंगे?

शराब में डूबा हुआ आदमी, जो अर्थ भी देखेगा शब्दों में, वह भी उसका अपना होगा। शराब की अभीप्सा, आकांक्षा से भरा हुआ आदमी इतना बेहोश है कि वह जो सुनेगा, उसमें से भी अपना ही अर्थ निकालेगा। अर्थ भी उसका मूर्च्छित का अर्थ होगा। अर्थ भी उसका अपना ही होगा। स्वाभाविक यही है।
तुम जो देखते हो, वह वही नहीं है जो है। तुम वही देखते हो जो तुम देखना चाहते हो। तुम वही सुन लेते हो जो तुम सुनना चाहते हो। तुम वही खोजते हो जो तुम खोजना चाहते हो। किसी दिन उपवास कर लो फिर उसे रास्ते से गुजरो जिससे रोज गुजरे थेः जो दुकानें मिठाई की कभी नहीं दिखाई पड़ती थीं, वह पहली दफा दिखाई पड़ेंगी। वही दिखाई पड़ेंगी, बाकी जब खो जाएगा। रेस्टॉरेंट्स, होटल्स, मिठाई की दुकान, चाय की दुकान--वे सब प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ेंगी। एक सात दिन उपवास कर लो, फिर निकलोः तुम्हें बाजार में जूते की दुकान, कपड़े की दुकान दिखाई पड़नी बंद ही हो जाएगी; सिर्फ तुम्हें भोजन की ही सामग्री की दुकानें दिखाई पड़ेंगी। क्योंकि तुम्हारी चेतना यहां भीतर भूख से भरी है। भूख देख रही है, अब तब नहीं देख रहे हो। तो दृष्टि सृष्टि है। बड़ी पुरानी कहानी है। महाराष्ट्र में संत हुए रामदास। उन्होंने राम
की कथा लिखी। वे लिखते जाते, और रोज लोगो को सुनाते जाते। कहते हैं, कथा इतनी प्यारी थी कि खुद हनुमान भी सुनने आते थे। छिप कर बैठ जाते भीड़ में। जब हनुमान सुनने आए तो बात कुछ राज की ही होगी, क्योंकि हनुमान ने तो कथा खुद ही देखी थी। अब कुछ इसमें देखने जैसा नहीं था। लेकिन रामदास कह रहे थे तो बात ही कुछ थी कि खुद देखने वाला मौजूद जो था, चश्मदीद गवाह, वह भी यह कहानी सुनने आता था। लेकिन जब एक जगह हनुमान को बरदाश्त न हुआ। क्योंकि हनुमान का ही वर्णन हो रहा था। और रामदास ने कहा, हनुमान गए अशोक-वाटिका में, लंका में। और उन्होंने देखा कि चारों तरफ सफेद फूल खिले हैं। हनुमान ने कहा, ठहरो। सुधार कर लो। फूल लाल थे, सफेद नहीं थे। रामदास ने कहा कि कौन नासमझ बीच में सुधार करवा रहा है? तब हनुमान ने अपने को प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा कि अब प्रकट करना ही पड़ेगा कि मैं खुद ही हनुमान हूं, जिसकी तुम कथा कह रहे हो। और मैं कहता हूं कि वहां फूल लाल थे, सफेद नहीं। रामदास ने कहा, कोई भी हो, चुप बैठो! फूल सफेद थे।
झगड़ा बहुत बड़ा हो गया। और तब एक ही उपाय था कि अब राम के पास जाया जाए। हनुमान ने कहा, तो चलो राम के पास। वे जो कह देंगे वही निर्णय। क्योंकि यह हद हो गई! मैं जब खुद चश्मदीद आदमी हूं और कह रहा हूं कि मैंने फूल देखे! तुम मेरी कथा कह रहे हो--और वह भी हजारों साल बाद कह रहे हो। और एक सी बात पर जिद्द कर रहे हो। क्या बिगड़ता है कि तुम हूल लिख दो कि लाल थे?
पर रामदास ने कहाः बिगाड़ने का सवाल नहीं; जो सच है, सच है। फूल सफेद थे।
झगड़ा राम के पास गया, और राम ने हनुमान से कहा, तुम चुप रहो। रामदास जो कहते हैं, ठीक कहते हैं। तुम उस समय इतने क्रोध में थे, आंखें खून से भरी थीं, तुम्हें लाल दिखाई पड़े होंगे। रामदास को कोई क्रोध नहीं है। वह दूर तटस्थ भाव से देख रहा है! फूल सफेद ही थे। मुझे भी पता है?
जब तुम क्रोध से देखोगे तो चीजें और हो जाएगी। स्वभावतः जब तुम लोभ से देखोगे तो चीजें और हो जाएंगी। जब तुम वासना, कामना से भर कर देखोगे तो चीजों में एक सौंदर्य आ जाएगा, जो है ही नहीं। देखने वाला अपने को ही फैला कर देखता है। इसलिए तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी सृष्टि हो जाती है। जब तुम बदलोगे और तुम्हारी दृष्टि बदलेगी, तत्क्षण सारी सृष्टि बदल जाएगी। जहां तुम्हें बहुमूल्य दिखाई पड़ता था वहां कचरा दिखाई पड़ेगा। जिससे तुमने असार समझ कर छोड़ दिया था, हो सकता था वहां सार दिखाई पड़े; और जिसे तुमने सार समझ कर छाती से लगा रखा था वहां तुम्हें असार दिखाई पड़े।
जीवन तुम्हारी दृष्टि का फैलाव है। और जिसके भीतर की दृष्टि खोई हो,
वह ऐसा ही जैसे भीतर है ही नहीं। सब सोया है। उस भीतर की दृष्टि के सोने के कारण तुम जीवन के भीतरी अंगों को नहीं देख पाते। बाहर की आंख बाहर को ही देख सकती है। भीतर की आंख भीतर देखेगी। तुम देखते हो मुझे, लेकिन अगर बाहर की आंख से देखते हो, तो तुम मेरे शरीर को देखोगे, तुम मुझे न देख पाओगे। अगर तुम भीतर की आंख से देखते हो तो ही मुझे पाओगे। तब यह शरीर सिर्फ घर रह जाएगा, ऊपर के वस्त्र, और भीतर के चैतन्य का आविर्भाव होगा। अगर तुम सिर्फ

कानों से सुनते हो बाहर के, तो तुम मेरे शब्द सुन पाओगे; और अगर भीतर का कान तुम्हारा जागा हो, तब तुम मेरे अर्थ को समझ पाओगे। क्योंकि शब्द तो खोल है, शरीर है; अर्थ, आत्मा है।
तुम जितने गहरे हो, उतना ही गहरा तुम देखोगे, उतना ही गहरा तुम सुनोगे, उतना ही गहरा तुम्हारा सारा अनुभव होगा। तुम अगर छिछले हो, तो अनुभव बहुत गहरा न पाएगा।
झेन कथा है कि एक सदगुरु अपने शिष्य के पास गया। वह बाहर ही बैठा था। सदगुरु ने पूछा, सत्य क्या है? उस शिष्य ने मुट्ठी बांध कर बताई। सदगुरु वापस लौटने लगा और उसने कहा कि पानी बहुत उथला है, बड़े जहाज यहां न रुक सकेंगे। शिष्य बड़ा दुखी हुआ, और उत्तर तो उसने बहुत सोच-समझ कर दिया था। वहीं तो भूल हो रही थी। उसने सुन रखा था कि जब यह गुरु लोगों से कुछ पूछता है, तो यह शब्दों में उत्तर नहीं चाहता। और उसने पुरानी कहानी सुन रखी थी। कि फलां शिष्य के पास गया तो उसने मुट्ठी बांध कर बता दी और इसने कहा कि ठीक। क्योंकि मुट्ठी बांधने का मतलब है एक; पांच नहीं; पंचतत्व नहीं, एकत्व; पांच इंद्रियां नहीं एक आत्मा। सो, सुन रखी थी कहानियां तो उसने भी मुट्ठी बांध के बताई लेकिन वह मुट्ठी झूठी थी, उसके भीतर एक नहीं था। उस मुट्ठी में पांच थे। क्योंकि मुट्ठी उतनी ही गहरी हो सकती है, जितना उसका अनुभव था। वह जानता तो इतना था कि पांच सच है। एक की बात तो सुनी थी, उधार थी, बासी थी, अपनी न थी। तो गुरु ने कहा, यह जगह बहुत उथली है, और बड़े जहाज यहां न रुक सकेंगे। बड़ा पीड़ित हुआ शिष्य, बड़ा दुखी हुआ।
वर्षों के बाद फिर आया। उसने फिर मुट्ठी बांधी। गुरु ने कहाः खूब! खूब खुदाई की। पानी खूब गहरा कर लिया! जब जहाज रुक सकता है।
देखने वालों को बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि दोनों बार एक ही बात हुई थी--
वह मुट्ठी बांधी गई थीं; पहली दफे भी और दूसरी दफे भी। लोगों ने गुरु से पूछा कि हम कुछ समझे नहीं, रहस्य कर दिया पहेली बना दी। पहली बार भी इस शिष्य ने यही मुट्ठी बांधी थी। इसलिए बीस साल बाद दुबारा आने की जरूरत थीं?
गुरु ने कहाः इस बार मुट्ठी में पांच नहीं, एक है। तब मुट्ठी में पांच थे। मुट्ठी दिखती थी बंधी है, भीतर खुली थी। अब मुट्ठी बाहर ही नहीं बंधी है, भीतर भी बंध गई है। अब इसकी मुट्ठी में अर्थ है। अब यह मुट्ठी प्रतीक नहीं है, अनुभव है।
शब्द तो वही हैं, प्रतीक वही हैं; लेकिन जैसे ही तुम बदल जाते हो, तुम्हारे शब्दों का अर्थ बदल जाता है--तुम्हारे जीवन के ढंग तुम्हारे जीवन की सुरभि बदल जाती है। सब कुछ वैसा ही रहता है, फिर भी कुछ भी वैसा नहीं रह जाता। सब कुछ ऊपर-ऊपर वैसा ही होगा। तुम कभी बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे, कभी तुम्हारे भीतर का कबीर भी जागेगा ही। आखिर कितनी देर लगाओगे। सब ऊपर-ऊपर ऐसा ही होगा, जैसा आज है--दुकान जाओगे, घर काम करोगे, बच्चों का पालन-पोषण करोगे, भूख लगेगी; खाना खाओगे; नींद लगेगी, सोओगे; सब ऊपर-ऊपर वैसा ही होगा--पहली मुट्ठी! लेकिन भीतर-भीतर सब बदल जाएगा--दूसरी मुट्ठी! तुम बदल जाओगे। और तुम्हारे बदलने के साथ जीवन के सारे अर्थ और जीवन का सारा काव्य, जीवन की सारी प्रतीति बदल जाएगी।
जब भीतर की आंख खुलती है तब तुम्हें पदार्थ दिखाई नहीं पड़ता है। या, पदार्थ दिखाई पड़ता है तो हाल हो जाता है। पदार्थ के भीतर जो छिपा है परमात्मा, वह दिखाई पड़ता है; पदार्थ उनकी पारदर्शी खो जाती है।
ये दो बातें ख्याल में रख लें।
पर्दा सत्य पर नहीं, अपनी ही आंख पर है; इसलिए घूंघट किसी और ने नहीं डाला। कोई और डालेगा तो आदमी सदा के लिए परतंत्र हो जाएगा। क्योंकि जब वह उठाना चाहता, तब उठेगा। लेकिन मनुष्य की आत्मा परम स्वतंत्र है। यही उसकी गरिमा है। तुमने ही डाला है। भटके हो तो तुम, भटके हो तो जान कर, भटके हो तो बूझ कर! अगर गलत भी गए हो, तुम ही गए हो! और इसलिए सुगम है कि तुम ठीक मार्ग पर आ जाओ। जिस दिन चाहोगे उसी दिन आ जाओगे।
दूसरी बातः यह ऊपर की आंखों पर घूंघट नहीं है; घूंघट भीतर की आंख पर है। इनको ख्याल में रखें, फिर कबीर के इन सूत्रों में उतरें।
घूंघट का पट खोल रे, तो को पीव मिलेंगे।

कबीर के लिए परमात्मा प्रिय है, प्रीतम है, पिया है।
सत्य को जब प्रेम की आंख से देखा जाता है, तो सत्य फिर एक रूखी-सूखी दार्शनिक धारणा नहीं होती; फिर सत्य प्रियतम होता है। फिर वही प्यारा होता है; काफी कुछ भी प्यारा नहीं रह जाता। और जहां भी वह होता है, वह सभी प्यारा हो जाता है।
तो एक तो यह बात ख्याल में लें कि सत्य को अगर तुमने एक रूखी-सूखी धारणा की तरह खोजना चाहा... जैसे विज्ञान की खोज है, वह रूखी-सुखी खोज है। उससे खोजी भीगता नहीं। उससे खोजी वही का वही रहता है। उसने खोजी के जीवन में रूपांतरण नहीं आता है, आर्द्रता नहीं आती, गीलापन नहीं आता। खोजी रूखा ही बना रहता है।
एक दार्शनिक खोजता है सत्य को; तर्क जुटाता है, बड़े सिद्धांतों के जाल खड़े करता है, सब तरह की परीक्षाएं करता है विचार से--उसका जीवन भी रूखा- सूखा रह जाता है। वह ऐसा वृक्ष है, जिस पर हरे पत्ते कभी नहीं लगते; जिसमें कभी कभी फूल नहीं आते। वह सूखी शाखाएं हैं, जिनमें कुछ नहीं लगता। शास्त्र का ढेर बढ़ता जाता है, शब्दों के जाल बढ़ते जाते हैं और भीतर के प्राण सूखते जाते हैं।
अगर तुम दार्शनिक के शब्द भी सुनो तो भी तुम्हें रेगिस्तान का स्वाद देंगे। सब सूखा, तप्त! उनसे कभी भी तुम्हें जीवन की हरियाली न उठती हुई मालूम पड़ेगी।
कबीर दार्शनिक नहीं हैं--कबीर प्रेमी हैं। उनके शब्दों में बड़ा रस है। और वह रस खबर देता है कि भीतर की किसी रसधार में डूबते हुए वे शब्द आए हैं।
इसलिए हमने तो ऋषि को कवि कहा है। संस्कृत में ऋषि और कवि दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। धीरे-धीरे हमें दो अर्थ करने पड़े। क्योंकि ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने बिना सत्य को जाने भी कविताएं लिखी हैं। कविताएं कितनी भी प्यारी हों उनकी, उनमें कोई आत्मा नहीं है। इसलिए वे खाली हैं। ऊपर काफी रंग-रौनक है; भीतर प्राण नहीं है। घर बहुत सुंदर है, निवासी नहीं है। देह बिल्कुल ठीक है, लेकिन प्राण-पखेरू उड़ चुके हैं, या कभी थे ही नहीं।
पश्चिम में मुर्दे को भी लोग ले जाते हैं तो खूब सजा कर ले जाते हैं। स्त्री मर जाती है तो भी उसके ओंठ पर लिपिस्टिक लगा देते हैं, आंख की पलकों पर काजल लगा देते हैं, गाल पर लाली लगा देते हैंः मरी हुई स्त्री बड़ी जीवित मालूम पड़ती है।
कवियों की कविताएं ऐसी ही हैं; वहां भीतर कुछ आत्मा नहीं है, ऊपर काफी रंग रौनक है। इसलिए अक्सर एक बात ख्याल रखना, किसी कवि की कविता पसंद आ जाए तो भी कवि को खोजने मत जाना, नहीं तो कवि को देखकर बड़ी निराशा होगी। कविता तो बड़ी ऊंची मालूम पड़ती थी, और कवि बिल्कुल साधारण मालूम पड़ेगाः कोई ऊंचाई नहीं, कोई गहराई नहीं। कविता पसंद आ जाए तो कवि के पास मत जाना। क्योंकि वहां व्यक्ति नहीं है। वहां सिर्फ एक कौशल है, एक तकनीक है। वह आदमी लय, छंद, शब्द, भाषा का ज्ञाता है, और इनको इस भांति बांध सकता है कि एक संगीत का भ्रम पैदा हो जाए। लेकिन सब ऊपर-ऊपर है--लाश पर लगा हुआ लिपस्टिक है; लाश की आंखों पर लगा हुआ काजल है। और स्त्री बिल्कुल सुंदर मालूम पड़ती है। और ऐसी लगती है कि कभी-कभी कश्मीर से यात्रा करके लौटी है। लेकिन भीतर सब मृत है। भीतर कोई जीवित नहीं है। इस स्त्री के प्रेम में मत पड़ जाना। इस स्त्री को सिवाय दफनाने के और कोई उपाय नहीं है।
कविता के प्रेम में अगर कभी आ जाओ तो कवि को खोजने मत जाना, नहीं तो मुश्किल में पड़ोगे; क्योंकि कवि को देखने से कविता भी व्यर्थ हो जाएगी। उर्दू में बड़े शायर हुए हैं, और उन्होंने बड़ी ऊंचाई की बातें कही हैं; लेकिन, उन आदमियों की तलाश में मत जाना। तुम उनको अपने से गया बीता पाओगे। ऋषि और कवि में यही फर्क है। कवि को तुम हमेशा उसकी कविता से छोटा पाओगे, ऋषि को हमेशा तुम उसकी कविता से बड़ा पाओगे। तुम जब ऋषि को खोजने जाओगे, उसके गीत को सुन कर, तब तुम्हें पता चलेगा कि गीत तो नाकुछ था, और अगर हम गीत में ही प्रसन्न होकर रह जाते, तो एक अवसर खो जाता। यह जिससे गीत निकला है, वह तो अनंत है; वह गीत तो सिर्फ इसकी एक लहर थी, और गीत नाकुछ था। एक दफा

तुम कबीर को देख लोगे, तो कबीर के वचनों में कुछ भी पता नहीं चलेगा; इस आदमी को तो पीछे ही छोड़े आए वह वचन। सागर पीछे छूट गया है, और एक हल्की सी बरखा का झोंका तुम्हारे पास आ गया था। एक छोटी सी बदली तुम्हारे घर पर आकर बरस गई थी--ऐसी थी कविता। और यह तो महासागर है--जिससे ऐसी अनंत बदलियां उठ सकती है और अनंत घड़ों पर बरस सकती हैं।
ऋषि हमेशा पाता है कि जो वह कहना चाहता था, वह नहीं कह पाया।
ऋषि हमेशा पाता है कि जो उसने कहा, वह छोटा हो गया--जो वह कहना चाहता था, उससे।
ऋषि के पास सत्य है। सत्य शब्दों से बड़ा है। जब भी सत्य शब्दों में लाया जाता है तो जैसे एक संकरी जगह में बड़े आकाश को कोई समाने की कोशिश करता हो। बड़ा कठिन है। और ऋषि के शब्दों में जो आनंद की पुलक है, वह केवल शब्दों का सार-संवार नहीं है। वह जो आनंद की पुलक है, वह जो जहां से शब्द आए हैं, जिस हृदय से जन्मे हैं, उसकी पुलक की थोड़ी सी खबर है। जैसे इस फूलों से भरे बगीचे से हवा का ए झोंका गुजर जाए तो फूलों की थोड़ी गंध साथ ले जाएगा-- राह पर चले हुए राहगीर को भी वह झोंका घेर लेगा, उसे भी थोड़ी फूलों की गंध मिल जाएगी। वह फूलों की गंध सिर्फ पास किसी बड़े बगीचे की खबर है। वह हवा के झोंके में जो थोड़ी सी शीतलता है, वह पास किसी सरोवर की झलक है।
कबीर ऋषि हैं। कविता के ढंग से उन्होंने जो कहा है, वह कविता से ज्यादा बड़ा है। और जब कवि देखता है जगत को तो सत्य रूखा नहीं रह जाता, रसपूर्ण हो जाता है। काव्य जीवन को देखने का वही ढंग है, जिस ढंग से प्रेमी प्रेयसी को देखता है। और तुम्हें शायद उसकी प्रेयसी बिल्कुल ना-कुछ मालूम पड़े, लेकिन प्रेमी को वही सब कुछ मालूम पड़ती है। प्रेमी प्रेयसी को देखता ही नहीं, सृजित करता है।
कहीं खलील जिब्रान ने एक वचन लिखा है कि प्रेमी अपनी प्रेयसी में वही देखता है, जो अगर परमात्मा की मर्जी पूरी होती तो वह स्त्री होती। प्रेमी अपनी प्रेयसी में वही देखता है, जो स्त्री की अनंत संभावना है; वह उसे आज देखता है, जो वह कल हो सकती है--अगर परमात्मा की मर्जी पूरी हो पाए। वह उस फूल को नहीं देखता है जो सामने है; वह उस फूल को देख सकता है जो हो सकता है इस फूल से। वह सारी संभावनाओं को मौजूद देखता है। वह सारे भविष्य को वर्तमान देखता है।
बाप अपने बेटे में वही देखता है--वह नहीं, जो है। इसलिए तो लोग परेशान होते हैं। हर बाप अपने बेटे की चर्चा कर रहा है, और लोग कहते हैं बंद भी करो! क्योंकि लोगों को उस बेटे में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता और बाप को सब कुछ दिखाई पड़ता है। और हर बाप को दिखाई पड़ता है अपने बेटे में। और फिर बेटे साधारण निकल जाते हैं।
बाप को क्या दिखाई पड़ता है बेटे में? बाप को वह दिखाई पड़ता है जो बेटा अगर ठीक-ठीक बढ़े तो होगा, उसे उसका पूर्व-दर्शन होता है। लेकिन बेटा अगर भटक जाए तो नहीं हो पाएगा। और बेटे भटक जाते हैं। बाप झूठा साबित होता है। लेकिन बाप ने जिस प्रेम की आंख से देखा था, वह हो सकता था।
हर मां अपने बेटे में श्रेष्ठतम को देखती है। वह श्रेष्ठतम हो सकता है। वह संभावना है। यह कंकड़ जैसा दिखाई पड़ने वाला बेटा, थोड़े ही निखार से, थोड़े ही छैनी के प्रयोग से हीरा बन सकता है; लेकिन बनेगा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।
प्रेम उसे देख लेता है, जो अगर सब ठीक-ठीक बीते तो, तुम हो सकते। घृणा
वह देख लेती है, जो अगर सब गलत हो जाए तो तुम हो जाओगे। घृणा तुममें नरक को देख लेती है, प्रेम तुम में स्वर्ग को देख लेता है। घृणा तुम में शैतान को देख लेती है, प्रेम तुम में भगवान को देख लेता है।
साधारण प्रेम में भी ऐसी झलक मिलती है। वह सिर्फ तुम्हारी कल्पना ही नहीं है। वह प्रेम की आंख है, जो छिपे को उघाड़ लेती है; जो दबे को प्रगट कर लेती है; जिसके सामने गुप्त अपने द्वार खोल देता है; रहस्य खुल जाते हैं। लेकिन जब कोई सारे जगत को प्रेम से देखता है, जब कण-कण को प्रेम से देखता है, जब रत्ती-रत्ती इस जगत की तुम्हें अपनी प्रेयसी या प्रेमी बन जाती, तब जिस विराट को उदय होता है, वही परमात्मा है।

इसलिए कबीर परमात्मा को पीव कहते हैं, प्यारा कहते हैं, प्रियतम कहते हैं। कबीर के लिए सत्य रूखा-सूखा, धारणा नहीं--प्रियतम है। विश्व और मनुष्य के बीच जो संबंध है, वह तर्क का नहीं, प्रेम का है। इसलिए दार्शनिक जिसे उपलब्ध नहीं कर पाता उसकी झलक कवि को मिल जाती है। और कवि को झलक ही मिलती है, ऋषि उसके साथ एक हो जाता है।
घूंघट के पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।
और आंख तुम्हारी घूंघट से दबी है।
क्या है घूंघट?
बुद्ध का एक वचन है कि तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई मित्र नहीं और तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई शत्रु भी नहीं। क्योंकि तुम अगर पीठ करके चलो, तो अपने ही सबसे बड़े शत्रु साबित होओगे। और तुम अगर सत्य की तरफ उन्मुख होकर चलो तो तुम ही अपने सबसे बड़े मित्र हो जाओगे।
क्या है घूंघट?
तुम जीवन के प्रति पीठ करके चल रहे हो। तुम भगोड़े हो, पलायनवादी हो, एस्केटिस्ट हो! तुम किसी तरह जीवन से बचना चाहते हो, साक्षात नहीं करना चाहते हो--वही घूंघट है।
समझने की कोशिश करें।
जहां भी जीवन होता है, वहीं से तुम बचने की कोशिश करते हो--और फिर भी तुम परमात्मा को पाना चाहते हो! परमात्मा महाजीवन का मार्ग है। पर क्यों आदमी जीवन से बचता है? कुछ भय है। एक तो भय है कि जीवन हमेशा प्रतिपल अपरिचित और अनजान में ले जाता है; अज्ञात में और अज्ञेय में ले जाता है। जीवन बंधी हुई लीक नहीं है, कोल्हू के बैल की भांति नहीं है कि तुम एक ही परिधि में चक्कर काटते रहते हो। जीवन एक आदत नहीं है, पुनरुक्ति नहीं है। जीवन प्रतिपल नया हो रहा है। और नये से तुम डरते हो; क्योंकि पुराने से तुम परिचित हो, नये से अपरिचित हो; पुराना जाना-माना है, तुम उसे भली भांति पहचानते हो। तुम पुराने हो। तुम पुराने के साथ जी लिए हो, सुख-दुख भोग लिए हो। नये का पता नहीं।
यह हैरानी की बात हैः तुम पुरानी बीमारी को भी पसंद करोगे नये स्वास्थ्य के मुकाबले। क्योंकि नये से भय लगता हैः पता नहीं क्या हो! बचपन से ही नये से भय लगता है। और सारा समाज सिखाता है नये से भय। अजनबी आदमी पास बैठ जाए तो तुम तत्क्षण नाम पूछते होः कहां जा रहे हो? क्या करते हो? क्या धर्म है? क्यों पूछते हो, पता हो? इसलिए कि जब तक अजनबी है तब तक भय है। पता लग जाए कि ठीक है, हिंदू धर्म मानता है... हम भी हिंदू, तुम भी हिंदू--परिचित हुए।... बाल-बच्चे हैं? क्योंकि बाल-बच्चे वाले आदमी का ज्यादा भरोसा! ... कांग्रेसी हो कि कम्युनिस्ट? कांग्रेसी ही है, चलो ठीक है।
हम व्यवस्था बना रहे हैं, उससे परिचित होने की।
ट्रेन में आदमी प्रवेश नहीं हुआ कि लोग उससे पूछना शुरू कर देते हैं। अगर वह आदमी जवाब न दे, या अनर्गल जवाब दे तो तुम शंकित हो जाओगे कि खतरा है, कि चेन खींच दो ट्रेन की, पुलिस को खबर करो। अगर वह आदमी कहे कि हां, हिंदू या मुसलमान... हिंदू ही हूं, तो संदेह पैदा करेगा। क्योंकि इसमें सोचने की क्या बात! कि तुम पूछो कितने बच्चे हैं और वह सोचे और गिनती करे, तो वह आदमी खतरनाक है! पता नहीं बिस्तर उठा ले जाए, सामान चुरा ले, जेब काट ले! भरोसा का नहीं है। अजनबी को हम जल्दी से परिचित बनाना चाहते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सवार था। और डिब्बे की छत की तरफ एक टकटकी लगा कर देख रहा था। दूसरा आदमी जो उसके पास बैठा था, वह थोड़ी देर में शंकित हो ही गया। उसने एक-दो दफा बात-चीत चलाने की कोशिश की, खांसा-खखारा; मगर वह एकटक देखता रहा। उसने पूछा भी, आप कहां जा रहे हैं? मुल्ला ने कोई जवाब न दिया। कहां से आ रहे हैं? उसने जरा जोर से पूछा कि हो सकता है कि आदमी बहरा हो। तो भी जवाब न दिया। वह एकटक लगाए त्राटक ही करता रहा। आखिर उस आदमी ने कहा, भाई साहब! आपका मफलर खिड़की से बाहर उड़ा जा रहा है! नसरुद्दीन ने कहा कि तुम चुप क्यों नहीं बैठते? तुम्हारी सिगरेट से तुम्हारा कोट जल रहा है। मैं तो कुछ नहीं बोला!

यह आदमी थोड़ा संदेह पैदा करेगा, यह थोड़ा डर पैदा करेगा। तुम शांति से अखबार भी न पढ़ पाओगे इसके पास बैठ कर; इसी-इसी की याद आएगी। तुम्हें जगह बदलनी ही पड़ेगी।
अजनबी डराता है--क्यों? परिचित भले लगते हैं--क्यों? भय है। और हम चाहते हैं सुरक्षा हम चाहते हैं जाना-माना एक घेरा। इसलिए तो जंगल में जाने में तुम डरते हो; बगीचे में जाने में डर नहीं लगता। बगीचा जाना माना है, आदमी का बनाया हुआ है, परिचित है। सीमा है उसकी, रास्ते हैं उसके। भटकने का कोई कारण नहीं है। जंगल में न रास्ते हैं, न सीमा है; भटकने की पूरी सुविधा है। परमात्मा का बनाया है और विराट है। इसलिए तो आदमी धीरे- धीरे आदमी की बनाई हुई धारणाओं में जीने लगा। वह बगीचों की भांति है। सत्य में जाने से डर लगता है; वह परमात्मा का विराट जंगल है। वहां तुम बचोगे, लौट पाओगे? कहना मुश्किल है। लौटोगे तो तुम ही लौटोगे--यह भी कहना मुश्किल है। वहां जो गया, वह वही तो नहीं लौटता है, जैसा जाता है।
हमने बुद्ध को जाते और लौटते देखा। हमने महावीर को जाते और लौटते देखा। उन सबसे हम भयभीत हो गए हैं। हम पूजा कितनी ही करें जाकर, महावीर के सामने कितना ही सिर पटकें, लेकिन हम भयभीत हो गए हैं। क्योंकि जिन लोगों को हमने उस अनंत के रास्ते पर जाते देखा और वे लौटे, हमने पाया कि वे बिल्कुल दूसरे हो गए। उनका हमसे कोई तालमेल न रहा। उनसे हमारे सब संबंध टूट गए। वे हमारे लिए बड़े से बड़े अजनबी, आउटसाइडर से हो गए।
वह बुद्ध और महावीर की पूजा भी हमारी एक तरकीब है--परिचय बनाने की। उनसे इस तरह हम परिचय बनाते हैं। हम कहते हैं, आप तीर्थंकर हो, बिल्कुल ठीक, चौबीस तीर्थंकर होते हैं, आप चौबीसवें हो। हम अपने गणित में बिठा रहे हैं। अब कोई कह दे हम पच्चीसवें हैं, झगड़ा शुरू! क्योंकि चौबीस से ज्यादा हो ही नहीं सकते! हम खांचा बना रहे हैं। हम, जो अज्ञात उतरा है महावीर में, उसके लिए भी व्यवस्था दे रहे हैं, तर्क और गणित की। हम कबूतरों के खाने में उनको बिठा रहे हैं कि ठीक, तुम यहां बैठ जाओ, चौबीसवें तीर्थंकर... बिल्कुल ठीक! तुम इस-इस तरह आचरण करो, क्योंकि तीर्थंकर ऐसा आचरण करता है! तुम इस तरह उठो, इस तरह बैठो; क्योंकि यह तीर्थंकर का ढंग है! जब वे हमारे ढांचे में बिल्कुल हमें बैठे हुए मालूम पड़ेंगे, हम निश्चिंत हो गए; अब कोई डर न रहा।
डर की वजह से हम पूजा करते हैं। पूजा हमारा परिचय बनाने का ढंग है। तो जिन-जिन को हम पहले गाली देते है, उन-उन की पीछे पूजा करते हैं। जिन-जिन के खिलाफ हम लड़ते हैं पहले, लड़ते हैं हम इसलिए कि जब तक वे अजनबी रहते हैं। फिर धीरे-धीरे हम उनके साथ राजी हो जाते हैं, परिचय बना लेते हैं। और तक तक वह बेचारे जा चुके होते हैं। फिर उनकी मूर्तियों को रखकर हम पूजा करते हैं। लगता है, अभी तक हम डरे हैं।
मैंने एक कहानी सुनी है। सुना है कि ईश्वर बहुत थका था एक दिन... एक दिन क्या, वह रोज ही थकता होगा। इतना विराट गोरख-धंधा, थकता ही होगा! इतने-इतने उपद्रव हैं! तो उसके एक नौकर ने, एक दास ने, सलाह दी कि आप ऐसा करो, कुछ दिन छुट्टी पर चले जाओ। और बहुत दिन से आप पृथ्वी पर भी नहीं गए। एक-दस पंद्रह दिन के लिए विश्राम करना अच्छा होगा। तो उसने कहा कि नहीं, पृथ्वी पर जाने का मन नहीं है। क्योंकि दो अढ़ाई हजार साल पहले गया कि विश्राम करने, और एक यहूदी लड़का मेरी के प्रेम में पड़ गया। अभी तक लोगों ने उसकी चर्चा बंद नहीं की पृथ्वी पर; वे लोग अभी भी चर्चा कर रहे हैं। एक लड़का मेरा पैदा हो गया था वहां--जीसस। वह छोटा सा प्रेम का मामला था। छुट्टी पर गया था और लोग अभी तक चर्चा कर रहे हैं और किताबें लिखे जाते हैं और कोई कहता है कि कुंआरी मेरी से पैदा हुआ जीसस, और कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। वह बकवास अभी तक उन्होंने बंद नहीं की। तो वहां तो नहीं जाना चाहूंगा।
क्या होता है।
दो-दो हजार साल तक लोग क्यों व्यर्थ की चर्चा चलाते हैं? अभी तक हम जीसस के साथ परिचित नहीं हो पाए, इसलिए हमें चर्चा चलानी पड़ती है। अभी तक यह आदमी बेबूझ है। अभी तक इसके कई कोने अज्ञात हैं। अभी तक हम इसे पूरा का पूरा समझने में सफल नहीं हो पाए। अभी भी कुछ न कुछ हिस्से ऐसे हैं, जो हमें अंधेरे में ले जाते मालूम पड़ते हैं; इसलिए चर्चा जारी है। नई थीसिस, नये

शोध ग्रंथ, नये शास्त्र लिखे जाते हैं। जीसस पर कोई लाखों किताबें लिखी हैं। और लोग लिखते ही चले जाते हैं। ऐसा लगता है कि यह आदमी हल नहीं हो पाएगा।
महावीर पर इतनी किताबें नहीं लिखी जाती। क्योंकि महावीर का जीवन सीधा-साफ है। हम उनसे परिचित हो गए। सच तो यह है कि महावीर के संबंध में बहुत लिखने को है ही नहीं। थोड़े से तथ्य हैं और उनको हमने चुकता कर लिया इसलिए उन्हीं-उन्हीं को जैन बार-बार लिखे जाते हैं--कुछ है भी नहीं उनमें लिखने को।
लेकिन जीसस ज्यादा बेबूझ मालूम पड़ता है। क्योंकि किसी भी खांचे में बिठाना मुश्किल है। वेश्या के घर में ठहर जाता है। चोर के साथ रुक जाता है। जुआरी और शराबियों के साथ दोस्ती बना लेता है। इसका कुछ भरोसा नहीं। शुरू से ही कहानी गड़बड़ हो जाती है। ऐसी मां को पैदा हो जाता है, जो कुंआरी है। उपद्रव शुरू हुआ और अंत तक चलता जाता है। कुंआरी मां से पैदा होता है। और फांसी तक बहुत सेनसेशनल है। सारी कथा! और सारी कथा में कौन हैं जो कि अछूते रह गए हैं, जिनको कि समझना मुश्किल है। महावीर को हमने निपटा लिया है; सीधा-साधा जीवन है! हमने उन्हें एक ढांचे में बिठा दिया है। राम को हमने एक ढांचे में बिठा दिया है; सीधा-साधा जीवन है। कृष्ण को हम नहीं बिठा पाए इसलिए गीता पर टीकाएं लिखी जाती हैं। और कृष्ण पर चर्चा जारी रहेगी। हमारी पूरी कोशिश है कि हमारी जानकारी से बड़ा जगत न हो। जहां-जहां हम पाते हैं, हमारी जानकारी से बड़ा है, वहीं हम ठिठक जाते हैं। और ध्यान रहे, जानकारी से बड़ा है। तुम्हारा जानना है ही क्या? जानने को अनंत शेष है।
और तुम अगर अनजान अपरिचित से भयभीत हो, तो तुम सत्य को कभी भी न जान पाओगे। इसलिए हम घूंघट डाल लेते हैं। जो-जो हमारी जानकारी के बाहर पड़ता है, उसको हम घूंघट से परदा कर लेते हैं। हम घूंघट के भीतर अपनी दुनिया को सम्हाल लेते हैं, जो हमारी जानकारी है, हमारी सीमा है, घूंघट के बाहर उसको डाल देते हैं, जो हमारी सीमा के बाहर है।
मनस्विद कहते हैं, इसीलिए हमारे भीतर चेतना दो हिस्सों में खंडित हो
गई हैः एक जिसको चेतन, कांशस कहते हैं; दूसरा जिसको अनकांशस कहते हैं। उन दोनों के बीच में जो परदा है, वही घूंघट है।
चेतना तो एक है। लेकिन हमने उसके छोटे साफ सुथरे हिस्से को, जंगल के
एक कोने को साफ कर लिया है। झाड़ काट दिए, सीमा बना ली, फेंसिंग लगा ली। छोटा सा हिस्सा, दसवां हिस्सा हमने अपनी चेतना का, साफ-सुथरा कर लिया है। वहां नीति है, धर्म हैं, आदर्श हैं, सिद्धांत हैं, शास्त्र हैं, गुरु हैं, मंदिर, पूजा, प्रार्थना--वहां हमने सब जमा दिया है। उसने नौ गुना बड़ा अनंत विस्तार वाला भीतर अचेतन हैः उसके और इस चेतन के बीच हमने पर्दा डाल दिया, ताकि वह दिखाई पड़े... क्योंकि हमारे भी तर्क वही हैं जो शुतुरमुर्ग दुश्मन को आता देख कर रेत में सिर को छिपा कर खड़ा हो जाता है और सोचता है, जो दिखाई नहीं पड़ता वह है नहीं। यही तो हम भी कहते हैं, कि परमात्मा पहले दिखाओ तब हम मानेंगे। जो दिखाई पड़ता है, वह है; जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह नहीं है! शुतुरर्मुग बिल्कुल नास्तिक है, पक्का! वह सिर को छिपा लेता है रेत में। वह कहता हैःन दुश्मन दिखाई पड़ता, न हो सकता है। हो तो दिखाओ!
डर है हमें, तो हमने पर्दा कर लिया, और हम साफ-सुथरे जमीन में रहते हैं। कभी-कभी अचेतन धक्के देता है। कभी-कभी कहें से घूंघट सरक जाता है। कहीं से व्यवस्था टूट जाती है। तो उस आदमी को हम पागल कहते हैं कि यह आदमी पागल हो गया। लेकिन हमें पता नहीं कि वह पागल हो ही इसलिए गया है कि उसकी जानकारी की सीमा में अज्ञात प्रवेश कर गया।
मैं एक किताब पढ़ रहा हूं एलीवेसेल की--एक यहूदी विचारक। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी में उसके मां-बाप, भाई-बहन सब मारे गए। अकेला वह किसी तरह बच निकला--छोटा सा लड़का! तो वह अपनी यात्रा का वर्णन कर रहा है कि जब उन्हें एक यात्रा की ट्रेन में, एक शिविर में ले जाया गया, जहां सभी को जला दिया जाना है... सब शक्ति हैं, लेकिन कोई उपाय नहीं है भागने का। और लाखों लोग हिटलर ने जलाए। उसने बड़ी-बड़ी भट्ठियां बनवाई, ऐसी भट्ठियां कभी नहीं बनाई गई।

तैमूर, चंगीज जब बचकाने साबित हो गए। क्योंकि उसने ऐसी भट्ठियां बनवाई, जिसमें दस हजार लोग एक साथ डाल दो और राख हो जाएं, एक सेकेंड में। विद्युत की भट्ठियां! ट्रेन उस तरफ बढ़ रही है। सब लोग परेशान हैं। लेकिन आदमी अपने को किसी तरह आश्वासन देता है कि कुछ न कुछ हो जाएगा; कोई चमत्कार होगा, आज्ञा रद्द हो जाएगी; ऐसा होगा, वैसा होगा... । लोग चर्चा कर रहे हैं और बंद कारागृह जैसी ट्रेन में जा रहे हैं।
एक स्त्री पागल हो गई। एक छोटा बच्चा और स्त्री, वे दोनों हैं, वे पागल
हो गए। वह बेटा तक उसे समझाने की कोशिश करता है कि मां, घबड़ाओ मत, जल्दी पिताजी से मिलना होगा होगा। चिल्लाओ मत, रोओ मत, जल्दी सब ठीक हो जाएगा! और वह स्त्री बार-बार चीखती है कि देखो, लपटें दिखाई पड़ रही हैं! देखते हो, चिमनी आकाश में उठी है! लोग एकदम घबड़ा कर, यह जान कर कि वह पागल है, खिड़की से झांक कर देखते हैं। न कोई चिमनी है, न कोई लपटें उठी जा रही हैं, न कोई लपटें दिखाई पड़ रही हैं। फिर उसको लोग डांटते हैं कि तू चुप रह। पर उसका पागलपन बढ़ता जाता है। फिर लोग उसे मारते हैं, चुप करने को। उसे कितना ही मारते हैं, लेकिन वह खिलखिला कर हंसती, वह कहती, तुम मुझे कितना ही मारो, लेकिन चिमनी है, लपटें उठ रही हैं, हजारों लोग जल रहे हैं! तुम्हें बास नहीं आती? लोग डर के मारे सूंघते हैं, लेकिन कोई बास नहीं है। फिर लोगों के पास एक ही उपाय है--जब भी वह चिल्लाती, क्योंकि वह उनके भीतर के भय को भी जगाती और अचेतन उनका भी चेतन में प्रवेश करता है। वह भी घबड़ा तो रहे हैं खुदः पता नहीं, क्या होने को है! और यह औरत एक और मुसीबत हो गई। यह घाव को छूती है बार-बार। तो वे उसके सिर पर डंडों से मारते हैं। वह जब बेहोश हो जाती तो चुप रहती है, और जब होश में आती है, तब वह फिर खिलखिला कर हंसती है और कहती है देखो, सचेत हो जाओ, भाग खड़े होओ, तभी वक्त है! मगर धीरे-धीरे लोग समझ गए कि वह पागल है; उसकी बातों पर कोई ध्यान देने की जरूरत नहीं।
तीसरे दिन सुबह ट्रेन जब स्टेशन पर जाकर लगी शिविर में और लोगों ने बाहर देखा, तो चिमनी जल रही है, और लपटें उठ रही है। और ठीक जैसा वर्णन वह स्त्री कर रही थी, वैसी ही लपटें हैं, वैसी ही चिमनी है। और वह पागल थी! और वे सब होश में थे।
पागल को अक्सर वह बातें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़तीं। और पागल को अक्सर भविष्य झांकने लगता है, जो तुम्हें नहीं झांकता। और पागल को ऐसे सत्य अदभुत होने लगते हैं, जो तुम्हें नहीं होते। लेकिन कोई पागलों पर ध्यान नहीं देता।
नई शोधें यह कहती हैं कि दुनिया में जितने पागल हैं उनमें से नब्बे प्रतिशत पागल वस्तुतः पागल नहीं हैं; उनके चेतन और अचेतन के बीच का पर्दा टूट गया है। और सारा मनोविज्ञान इतनी ही कोशिश करता है कि पर्दे को फिर से बिना दे, तो वह फिर सामान्य आदमी हो जाए। पर्दा तो उठाने को कबीर भी कहते हैं। तो दुनिया में पर्दा उठाने के दो ढंग है।
एक तो यह है कि पर्दा तुम्हारी समझ के बिना उठ जाए, तो तुम पागल हो जाओगे; अगर तुम्हारी समझ के साथ उठ जाए तो तुम परमहंस हो जाओगे। अगर पर्दा अपन आप किसी तरह सरक जाए तो अचेतन टूट पड़ेगा तुम्हारे चेतन पर। अंधेरा भर जाएगा तुम्हारी रोशनी से भरे घर में। तुम्हारी सब सीमाएं अस्त-व्यस्त हो जाएंगी, भूकंप आ जाएगा। तब तुम विक्षिप्त हो जाओगे। और अगर होशपूर्वक, जुगत से तुम खुद ही घूंघट को उठाओ--होशपूर्वक, जान कर, समझपूर्वक एक-एक कदम उठाओ--तो तुम विमुक्त हो जाओगे। विक्षिप्त या विमुक्त--दो घटनाएं घट सकती हैं पर्दे के टूटने से। शायद हम इसलिए डरते भी हैं कि घूंघट को उठाया और कहीं पागल हो गए... !
मैंने जो ध्यान की विधियां खोजी हैं, वह सब ऐसी हैं जिनमें तुम जुगत
से पर्दा उठा सको। वह सब समझपूर्वक पागल होने की विधियां हैं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, यह क्या पागलपन करवा रहे हैं। मैं उनको कहता हूं, जान कर ही करवा रहा हूं। यही तुम्हारा भय है कि पागल न हो जाओ। तो मैं तुम्हें जानकर करवा रहा हूं ताकि तुम जान कर पागल हो सको, जान कर वापस लौट सको। जान कर चेतन में आ जाओ और जान कर अचेतन में चले जाओ, बीच का घूंघट हटाने की कला तुम्हें आ जाए। फिर तुम कभी पागल न हो सकोगे।

इसलिए परमसंतों में और पागलों में थोड़ा सा तालमेल होता है। और अक्सर लोगों को वे पागल मालूम पड़ते हैं--अक्सर पागल मालूम पड़ते हैं। एक बात का तालमेल होता है कि दोनों में घूंघट मालूम पड़ते हैं--अक्सर पागल मालूम पड़ते हैं। एक बात तालमेल होता है कि दोनों में घूंघट उठ गए। पागल का अचेतन में उठा गया हैं। परमहंस का जान-बूझ कर उठाया गया है। इसलिए दोनों में एक बात समान है कि दोनों के घूंघट हट गए हैं।
अगर तुम पागल होने से बचना चाहो तो परमहंस होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि तुम जहां खड़े हो वहां किसी भी दिन घूंघट टूट सकता है। तुम ठेठ बीच में खड़े हो। और तुम अगर अनजाने गिर गए पागलपन में तो तुम्हें वापस लाना बहुत असंभव है। इसके पहले कि पागलपन में प्रवेश हो जाए, तुम खुद ही जाग जाओ और पागलपन में से गुजर जाओ। होशपूर्वक जो पागलपन में गुजर जाता है वह परमहंस हो जाता है। होशपूर्वक पागल हो जाना परमहंस होने की कला है।
कबीर कहते हैं, घूंघट के पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।
घट-घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मन बोल रे।
घट-घट में, कण-कण में, एक का ही वास है। जीवन तो एक है। कहीं वृक्ष हो गया, कहीं चट्टान है, कहीं चांद तारा है; कहीं पशु-पक्षी है, कहीं मनुष्य है; कहीं विक्षिप्त है, कहीं विमुक्त है। जीवन तो एक है; रूप अनेक हैं। और सब रूपों के भीतर छिपा निराकार तो एक है। उसी से सब रूप पैदा होते हैं और सभी उसी में खो जाते हैं।
इसलिए कबीर कहते हैं, शत्रु को देखना बंद कर दो, शत्रु यहां कोई भी नहीं। अजनबी यहां कोई भी नहीं, अपरिचित यहां कोई भी नहीं... वही है! चोर में भी वही, साधु में भी वही। पापी में भी वही, पुण्यात्मा में भी वही। तो तू कटुक वचन मत बोल रे।
कटुक वचन मत बोल रे तो प्रतीक है कि तू एक कठोर शब्द भी मत बोल। तू क्रोध को बीच में मत ला। घृणा को बीच में मत ला। ईर्ष्या, वैमनस्य को बीच में मत ला। क्योंकि घृणा तू किसको करेगा, क्रोधी तू किस पर होगा? वही एक है!
लेकिन यह तो घूंघट को सरकाने की विधि है। हम क्या करते हैं? हम तो घूंघट को मजबूत करते हैं। हमारी आम दृष्टि यह है कि सारी दुनिया हमारी दुश्मन है। चाहे तुम जान कर सोचते हो या नहीं, लेकिन तुम मानते हो कि सारी दुनिया तुम्हारी दुश्मन है। इस बड़ी, दुश्मनों की दुनिया में तुमने थोड़ा सा परिवार बना लिया है। पत्नी है, बच्चे हैं--ये अपने हैं, बाकी सब पराए हैं। यह परिवार भी धीरे-धीरे छोटा होता जाता है। कभी सौ पचास लोग एक परिवार में रहते थे, वे अपने थे; अब परिवार में पांच लोग बचे हैं। पति है, पत्नी है, बच्चे हैं--वे भी पक्के मालूम नहीं पड़ते कि अपने हैं; क्योंकि तलाक हो सकता है, पत्नी किसी और की हो सकती है। वस्तुतः अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि तुम अकेले ही बचे हो। सारी दुनिया दुश्मन है! और तुम्हें सारी दुनिया से लड़ना है!
और यह शिक्षा, संस्कृति, समाज के संस्कारों का परिणाम है। क्योंकि सिखाई जा रही है प्रतिस्पर्धा, काम्पिटीशन, लड़ो! क्योंकि तुम्हें भी वही जाना है जो दूसरों को पाना है। चीजें कम हैं, संघर्ष जरूरी है। एक-दूसरे की गर्दन को काटे बिन पहुंचोगे कैसे! एक-दूसरे को सीढ़ी बनाओ! एक-दूसरे के सिर पर पैर रखो और ऊपर चढ़ो! ऊपर चढ़ने का एक ही उपाय है कि लड़ो! कि अगर तुम जरा चूके, जरा शिथिल हुए, विनम्र हुए, भटक जाओगे, फिर पहुंच न पाओगे। संघर्ष कठिन है। और हर आदमी दुश्मन है।
जब हर आदमी दुश्मन दिखाई पड़े तो पर्दा, घूंघट मजबूत होता जाएगा। तब तुम जब तक कारण न मिल जाएं, किसी को मित्र नहीं कहते। लेकिन शत्रु तो सब हैं ही--अकारण। जब तक बिल्कुल सिद्ध न हो जाए कि यह मित्र है, तब तक तुम किसी को मित्र नहीं मानते। लेकिन शत्रु बिना सिद्ध किए सभी हैं।
कबीर ठीक उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जब तक सिद्ध न हो जाए
कि शत्रु है तब तक तो कम से कम मित्र देखो! लेकिन बड़े मजे की बात है, एक आदमी चोरी कर ले तुम्हारी, सारी मनुष्यता चोर हो जाती है। उस दिन से फिर तुम्हारा मनुष्यता पर विश्वास टूट जाता है। चार अरब मनुष्य हैं, और एक

आदमी ने चोरी कर ली, और चार अरब मनुष्य चोर हो गए! अब तुम किसी पर भरोसा नहीं कर सकते। जिसने चोरी की उस पर मत करे, एक को छोड़ दो; लेकिन एक को छोड़ कर जो बचते हैं, चार अरब मनुष्य, इन्होंने तो कुछ नहीं किया।
एक मुलाकात ने तुम्हारे साथ कुछ बुरा कर दिया, सारे मुसलमान बुरे हो गए! एक हिंदू ने तुम्हें धोखा दे दिया, सारे हिंदू खराब हो गए। एक जैन बेईमान निकल गया, सारे जैन बेईमान हो गए। जैसे तुम तैयार ही बैठे हो सभी को दुश्मन मानने के लिए! एक सिद्ध कर देता है, सब सिद्ध हो जाते हैं। लेकिन एक आदमी अच्छा हो, उससे कुछ नहीं होते सिद्ध। यह बड़े मजे की बात है। एक मुसलमान तुम्हें कितना ही सहायता दे, और कितना ही अच्छा हो, साधु हो, मृत्यु के क्षण में दांव पर अपने को लगा दे, तो भी सब मुसलमान साधु नहीं होंगे। तुम कहोगे, यह अच्छा आदमी, बाकी सब बेईमान।
मैं यह कहना चाह रहा हूं कि तुम मानकर ही चलते ही हो कि सब शत्रु हैं।
और जब तुम यह मानकर चलते हो, तो तुम्हारा घूंघट मजबूत होता है। इस घूंघट को तोड़ने का उपाय है कि तुम दूसरे के प्रति जो दुर्भाव है, इसे गिराओ। महावीर दुर्भाव के गिराने को अहिंसा कहते हैं। बुद्ध दुर्भाव के गिराने को करुणा कहते हैं। क्राइस्ट दुर्भाव को गिराने को सेवा कहते हैं। वे सब शब्दों के भेद हैं। एक बात पक्की है कि दूसरे में तुम दुश्मन मत देखो; क्योंकि घट-घट में साईं रमता! वह एक ही सब में रमा हुआ है, तुम उसको ही देखो। वही प्रियतम सब में छाया हुआ है। सब हृदय की धड़कनों में, सब श्वासों में की श्वास में!
कटुक वचन मत बोल रे!
धन जोवन को गर्व न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे।
अकड़... ! बहाने अनेक, अकड़ एक है। कोई धन से अकड़ा है, कोई पद से अकड़ा है। कोई ज्ञान से अकड़ा है, कोई त्याग से अकड़ा है। कोई इसलिए अकड़ा है कि मैं जवान हूं। कोई इसलिए अकड़ा है कि मैं शक्तिशाली हूं। जितनी अकड़ उतना घूंघट मजबूत। जितना अहंकार, उतना घूंघट कमजोर। तो अकड़ करने योग्य भी क्या है? जवानी रुकती कहां? तुम अकड़ भी न पाओगे, जवानी चली जाएगी! हवा का झोंका है-- आया और गया! और जो सदा नहीं रहने वाला उस पर अकड़ना क्या!
अब यह बड़े मजे की बात है कि जिन्होंने उसे खोज लिया जो सदा रहेगा, वे अकड़ते ही नहीं; और जिनके हाथ में हवा के झोंकें बंध हैं, मुट्ठी बंधे हुए हैं हवा के झोंके पर, वे अकड़े जा रहे हैं!
धन का क्या करोगे? धन से क्या पा लोगे? ... क्षुद्र मिल सकता है, मिलता है! विराट तो खरीदा नहीं जा सकता।
अकड़ क्या है।
धनी से ज्यादा गरीब आदमी कहां है! धन है पास में, और तो कुछ भी नहीं है।
तो धन बोझ ही हो जाएगा। और कितनी देर पास में होगा! आज है, कल नहीं होगा। मृत्यु तो छीन ही लेगी। जवानी... कितने लोग तुमसे पहले जवान नहीं रहे! कितने लोग जवानी में अकड़े नहीं! ... और कितने लोगों ने जवानी में ऐसा नहीं समझा कि बस, अद्वितीय हैं वे! जैसे सदा यह जवानी रहेगी! हवा का एक झोंका, या पानी की एक लहर...
समुद्र के किनारे जाकर देखो, कोई पानी की लहर बड़े जोर से उठती है, बड़ी अकड़ कर उठती है--उठ भी नहीं पाई कि गिरना शुरू हो जाती है।
इधर तुम जवान हो भी नहीं पाए कि बुढ़ापा आना शुरू हो जाता है; जवानी जैसे बुढ़ापे के आने का ढंग है; जवानी जैसे द्वार है। जिससे बुढ़ापा आता है किस बात से अकड़े हो? जीवन से अकड़े हो? इस जीवन के पीछे सिवाय मौत के और कुछ भी नहीं है। यह सारा जीवन जाएगा तो मौत के गढ़े में। सब रास्ते रोम जाते हों या न जाते हों, मरघट जरूर जाते हैं।
कबीर का एक वचन हैः ई मुर्दन के गांव। कबीर कहते हैं, यह गांव, जहां तुम बसे हो, तुम समझते जीवन है? मुझे दिखाई पड़ता है, तुम सब मुर्दे हो। मुर्दे ही हैं--क्यू में खड़े; जब जिसकी बारी आ जाए। कोई जरा जल्दी, जो क्यू में आगे था। और बड़ा मजा यह है कि क्यू में आगे पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं कि किस तरह नंबर एक खड़े हो जाएं। मुर्दे हैं! मरना ही है जब यहां, तो इन बस्तियों को तुम बस्तियां मत कहो, मरघट कहो। देर-अबेर है... क्योंकि मरघट पर जगह खाली नहीं है। वहां लाइन लगानी पड़ती है। जब तुम्हारा समय आएगा,

सुविधा होगी, कब्र खाली मिलेगी, तुम भी पहुंच जाओगे। तुम जा कहां रहे हो-- सिवाय मृत्यु के और कहीं भी नहीं! रास्ते अलग-अलग दिशाएं भिन्न-भिन्न, हाथ तो मौत आती है। गर्व करने योग्य है भी क्या!
धन जोवन को गर्व न कीजै... क्योंकि अगर इसका गर्व किया, अकड़े तो पर्दा मजबूत होगा। अगर तुमने देखा कि यह सब पानी पर खींची गई लकीर है, खिंच भी नहीं पाती और मिट जाती है, और गर्व छोड़ दिया--तो तुम पाओगे कि पर्दा हटने लगा, घूंघट सरकने लगा।
धन जीवन को गर्व न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे।
और ये जो पांच तत्वों से बनी हुई काया है, यह बिल्कुल झूठी है--सपने जैसी है। माना कि सपना काफी दिन चलता है, सत्तर साल चलता है, पर समय का ही फर्क है। सपना लगा, घूंघट सरकने लगा।
कभी तुमने ख्याल किया, रात सपने में सात दिन में सत्तर साल हो सकते हैं। सात मिनट सपना चले, और सत्तर साल का जीवन उसमें बीत जाए। क्या फर्क है? सुबह उठ कर तुम कहो, हद हो गई, पूरा जीवन बचपन से लेकर मरने तक, सात मिनट में बी गया! कभी-कभी कुर्सी पर बैठे तुम्हें झपकी लग जाती है, तब तुमने घड़ी देखी कि बारह बज कर एक मिनट। एक ही मिनट हुआ और भीतर तुमने इतना बड़ा सपना देखा कि जो एक मिनट में कैसा समा गया! तुम उस सपने को बोलो भी, तो भी दस मिनट लगते हैं। अगर तुम किसी को बताओ भी कि क्या देखा, तो भी दस मिनट लगते हैं। वह एक मिनट में समा कैसे गया! एक क्षण में भी पूरा जीवन समा सकता है। मनोवैज्ञानिक की कुछ खोजें इस बात की तरह इशारा करती हैं कि जीवन की लंबाई से कोई फर्क नहीं पड़ता। कुछ पक्षी हैं, पांच साल जीते हैं। कुछ कीड़े- पतंगे हैं, चार माह जीते हैं। कोई पतंगा है, एक सांझ जीता है--बारह घंटे ज्यादा। लेकिन बारह घंटे में वह उतना ही जी लेता है जितना तुम सत्तर साल में जीते हो। प्रेम में पड़ता है, बच्चे पैदा करता है, अंडे खाता है, घर-गृहस्थी सम्हालता है, चिंता-फिकर में पड़ता है... संघर्ष, लड़ाई, झगड़े--सब होता है। बारह घंटे में सब पूरा हो जाता और मर जाता है। अगर ठीक समझो तो तुमसे ज्यादा कुशल है, क्योंकि तुम जो काम सत्तर साल में कर पाते हो, वह बारह घंटे में कर देता है। इफिसिएंसी तो उसकी ही ज्यादा है। कुशलता तो उसी की ज्यादा है। सब कर देता है। कुछ बचता नहीं करने को, सब पूरा हो जाता है। सत्तर साल चले सपना कि सात क्षण चले--क्या फर्क पड़ता है! सपना सपना है। समय की लंबाई सपने को सत्य नहीं बना सकती। फिर सपने और सत्य में फर्क क्या है? सत्य और सपने का एक ही फर्क है। सपना--जो कभी शुरू हो और कभी अंत हो; और सत्य--जो न कभी शुरू हो और न कभी अंत हो।
गर्व ही करना है तो सत्य को खोजो, उसका करो। और जिसने उसको पा लिया वह
तो कभी गर्व करता नहीं। तुम सपने हाथ में लिए घूमते हो ओर बड़े अकड़े हुए हो।
धन जीवन को गर्व न की जै, झूठा पचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि लै, आसन सौं मत डोल रे।।
यह बड़ा बहुमूल्य वचन है। यह सारा है सभी संतों का।
सुन्न महल में दियना बारि ले। भीतर तेरा जो शून्य का भवन है, उसमें ज्ञान का, प्रकाश का, दीया बार ले। वह तेरे भीतर जो शांत शून्यता है, उस शांत शून्यता में तू जागरूक हो जा।
सुन्न महल में दियना बारि लै, आसन सों मत डोल रे।
और उस दीये को जलाने के दो अनिवार्य चरण हैं। एक कि तू अडोल हो जा। आसन सों मत डोल रे।
जापान में झेन फकीरों ने एक पद्धति विकसित की, जिसको वे झाझेन कहते हैं। झाझेन का मतलब होता हैः जस्ट सिटिंग, डूइंग नथिंग। बस बैठ रहना, कुछ करना नहीं। सिर्फ एक ही ध्यान रखना कि आसन डोले न। बड़ी कीमती है।
अगर तुम को बिना डोले थोड़ी देर बैठने में समर्थ हो जाओ, जैसे-जैसे शरीर का डोलना बंद होगा, वैसे-वैसे मन का डोलना बंद हो जाएगा। क्योंकि शरीर और मन दो चीजें नहीं, एक ही चीज के दो पहलू हैं। जब शरीर नहीं डोलता तो मन कैसे डोलेगा। या मन तो डोले तो शरीर का डोलना रुक जाता है। कहीं से भी शुरू करो, लेकिन अडोल हो जाओ। जिसको झाझेन कहते हैं वह, उसी को कबीर ने कहा है, आसन सौं मत डोल रे। बैठ जाओ बिना डोले, कुछ मत करो! एक ही ख्याल रखो कि जरा भी कंपन न बचे। शरीर ऐसे हो जाए जैसे पत्थर की मूर्ति। इस शरीर के

पत्थर की मूर्ति होने में ही तुम पाओगे कि पहले मन शिथिल होगा, विचार कम होंगे, कम होंगे... । कभी-कभी एक क्षण को जब शरीर बिल्कुल अडोल होगा, उसी वक्त विचार भी खो जाएंगे, शून्य हो जाएगा। यह पहला चरण। अडोल होकर तुम शून्य महल का द्वार खोल लोगे।
और तब दूसरा चरण कि उस शून्य महल में जगा जाओ। उसमें पूर्ण विवेक उपलब्ध हो जाओ। देखो, बेहोश को सम्हाल लो। जागरूक! सो मत जाओ।
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे। क्योंकि सो भी सकते हो। अगर सो गए तो चूक गए। क्योंकि अगर तुम बिना देखे ही शून्य हो गए, तो शून्य तुम्हारा अनुभव न हो पाया। तुम दरवाजे तक पहुंचे और वहीं सो गए सीढ़ियों पर, महल में प्रवेश न हो पाया।
गहरी निद्रा में यही घटता है--शरीर अडोल हो जाता है। तुमने ख्याल किया होगा जिस दिन नींद ठीक आती उस दिन तुम करवट बहुत बदलते हो। जिस दिन नींद ठीक आती है, उस दिन करवट कम बदलते हो। जिस दिन नींद सच में ही ठीक आती--जिसे कहते हैं घोड़े बेच कर सो गए--उस दिन तुम करवट बदलते ही नहीं। क्योंकि शरीर अडोल हो जाता है। और जब शरीर अडोल हो जाता है तो भीतर स्वप्न शांत हो जाते हैं; तब सुषुप्ति आती है, जो स्वप्न-रहित निद्रा है। उस सुषुप्ति का एक क्षण भी तुम्हें ऐसा लगेगा कि परम आनंद और ताजगी हुई। लेकिन कोई तुमसे पूछे कि सिर्फ सोने से आनंद और ताजगी कैसे हो गई, तो तुम भी न बता पाओगे। तुम द्वार तक पहुंच गए थे सुन्न महल के, लेकिन सोए थे, दरवाजे से वापस आ गए, भीतर प्रवेश न कर पाए।
पतंजलि ने कहा, समाधि और सुषुप्ति में एक ही अंतर है, अन्यथा दोनों समान है। वह अंतर है कि सुषुप्ति में तुम्हें होश नहीं होता, समाधि में होश आता है; अन्यथा सुषुप्ति ठीक समाधि जैसी है। क्योंकि ठीक पहला चरण तो वही है कि शरीर बिल्कुल अडोल हो जाए, मन बिल्कुल शून्य हो जाए। और दूसरा चरण यह है कि तुम जाग जाओ, और होश से भर जाओ। फिर सुषुप्ति समाधि हो गई। फिर सोना ही परम जागना हो गया।
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे।
जागू जुगत सों, रंगमहल में पिय पायो अनमोल रे।
जागू जुगत सों, जागने की जुगत की तरकीब से, पिय पायो अनमोल रे!
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसान सों मत डोल रे।
जागु जुगत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
और फिर जागा जा वहां, फिर होश से देख उस शून्य के महल को। तत्क्षण वह शून्य का महल रंगमहल हो जाता है। जागते ही शून्य नहीं रह जाता। परम भोग का द्वार खुल जाता है, परम आनंद का! इसलिए रंगमहल हो जाता है। राग-रंग, अनंत राग-रंग! क्योंकि जीवन एक उत्सव है। और परमात्मा सदा नाच रहा है, सदा गीत गा रहा है। परमात्मा एक आनंद है। वह आनंद का ही नृत्य है। तो जैसे ही तुम जागोगे, शून्य महल तत्क्षण रंगमहल हो जाता है।
जागू जुगत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
और न केवल शून्य का महल रंगमहल हो जाता है, उस रंगमहल में प्रियतम से मिलने हो जाता है।
कहे कबीर आनंद भयो है, बाजतम अनहद ढोल रे।
कबीर कहता है, परम आनंद है, और ऐसा ढोल बज रहा है, ऐसा संगीत बज रहा है,
जो अनहद है।
अनहद बड़ा कीमती शब्द है। अनहद का मतलब है, जिसकी कोई हद नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं, जो बजता ही रहता है, जो सदा बजता रहा है; तुम जानो या न जानो, जो अभी भी बज रहा है; तुम नहीं थे, तब भी बजता था; तुम नहीं होओगे, तब भी बजता रहेगा! इस जगत का उत्सव तुम्हारे कारण नहीं चल रहा है। अनहद, यह उत्सव चलता ही रहा है। यह उत्सव चलता ही रहेगा! दिन हो कि रात, अंधेरा हो कि प्रकाश, सुबह हो कि सांझ, चांद-तारों हों कि सूरज--यह नृत्य चलता ही रहता है! सारा जगत नृत्य लीन है और एक अनहद ढोल बज रहा है।
कबीर उसको ढोल कहते हैं। उसी को उपनिषदों ने ओंकार कहा है। वही नाद, अनहद नाद, एक राग, एक संगीत, बिना किसी के बजाए बज रहा है। क्योंकि अगर कोई बजाएगा तो कभी थक भी जाएगा। कोई बजाएगा तो कभी रुक भी जाएगा। नहीं, बिना किसी के बजाए बज रहा है; कोई बजाने वाला नहीं।

बड़ी गहरी धारणा है, और धारणा यह है कि कोई नाचने वाला नहीं, नृत्य चल रहा है। क्योंकि नाचने वाला होगा तो कभी थकेगा, कभी विश्राम करेगा। अस्तित्व एक नृत्य है--नर्तक वहां कोई भी नहीं। अस्तित्व सृजन है-- स्रष्टा वहां कोई भी नहीं। व्यक्ति कोई भी नहीं है। जिस दिन तुम शून्य महल में प्रवेश करोगे, उसी क्षण तुम्हें दिखा पड़ेगा कि यह अनहद नाद से सदा चल रहा था। तुम बहरे थे। यह शून्य महल तो सदा ही रंगमहल था, तुम अंधे थे। और यह प्रियतम तो तुम्हारे भीतर ही बैठा था।
तुम ही हो प्रियतम, तुम ही हो प्रियतमा! किसी और से तुम्हारा मिलन होने का नहीं है--अपने से ही मिलन होना है!
कहै कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।
और जब तक ऐसा क्षण न आ जाए, जहां तुम भी कह सको, आनंद भयो है, तब तक चेष्टा को शिथिल मत करना। और चेष्टा एक ही है, जुगत एक ही हैः जागु जुगत सों। एक ही चेष्टा है कि तुम जो भी कर रहे हो, होशपूर्वक करो। तुम इतने होशपूर्वक करो, जो भी कर रहे हो कि धीरे-धीरे होश की किरण तुम्हारी नींद में समा जाए। तब तुम्हारी सुषुप्ति समाधि बन जाएगी। तब तुम सोए-सोए जाग जाओगे। तब तुम सोए में जगा जाओगे। तब तुम पाओगेः सो भी रहे हो, जागे हुए भी हो। और जिस क्षण ऐसा घट जाएगा, उसी दिन तुम कहोगेः आनंद भयो है, बजात अनहद ढोल रे।
और जब तक ऐसी घड़ी न जाए, तब तक रुकना मत। क्योंकि बहुत से पड़ाव धोखा देते हैं कि मंजिल हैं। लेकिन जब तक तुम्हारा पूरा प्राण न कह दे कि आनंद भयो है, तुम नाचने न लगो और अनहद ढोल न सुनाई पड़ने लगे, कि सब तरफ राग-रंग है...
समझ लें।
यात्रा के प्रारंभ में आदमी शांति की तलाश करता है। शांति मिल जाएगी-- अगर तुम सुन्न महल में सोया हुए भी प्रवेश कर गए, तो शांति मिल जाएगी। लेकिन वह पड़ाव है, मंजिल नहीं। नींद से भी शांति मिल जाती हैं। इसलिए तो डाक्टर, चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, अगर तुम अशांत हो तो ट्रैंक्वेलाइजर देते है। नींद आ जाए तो शांत हो जाओ। अच्छी नींद आ जाए तो शांति आ जाएगी। पागल का भी एक ही इलाज है उनके पास कि ट्रैंक्वेलाइजर दें कि वह सो जाए। सो जाए तो शांत हो जाए। सोने से शांति मिल जाएगी। इसलिए धर्म का लक्ष्य शांति नहीं हो सकता। शांति को सिर्फ प्राथमिक तैयारी है। वह तो सुन्न महल है। धर्म तो कभी पूरा होगा, जब वह रंगमहल हो जाए।
इसलिए आनंद लक्ष्य है, शांति नहीं। शांति तो निगेटिव है, नकारात्मक है। शांति का अर्थ है तनाव नहीं। परेशानी नहीं लेकिन इतना क्या काफी है... इतना क्या काफी है कि तुम परेशान नहीं? इतने से तुम कैसे कहोगे, आनंद भयो है? इतना ही कहोगे कि दुख नहीं रहा। लेकिन दुख न होना कोई बड़ी उपलब्धि तो नहीं हुई। यह तो ऐसे ही हुआ कि पैर से कांटा निकल गया, लेकिन फूलों की वर्षा कहां हुई अभी?
शांति नकारात्मक है; वह पड़ाव है। आनंद विधायक है; वह लक्ष्य है। पहले शांति और शांति मिलेगी--अगर तुम, आसन सों मत डोल रे, उसको साध लो।
यहां ध्यान के जो प्रयोग इस समाधि शिविर में चल रहे, उन सब में पहले तुम्हें डुलाने की चेष्टा है, ताकि शरीर डोल ले पूरा, मन भर कर। क्योंकि अगर शरीर में तनाव रह जाए, उत्तेजना रह जाए, तो जब तुम शांत खड़े या बैठे होओगे, तो वह उत्तेजना चहल-पहल करेगी, शरीर डोलना चाहेगा। इसलिए इन सारे प्रयोगों में पहले पूरी तरह डुला दो शरीर को, ताकि शरीर की आकांक्षा हल हो जाए। और तब तुम अगर थोड़े से क्षणों को भी अडोल हो गए, बस, शांति का पहला कदम पूरा हुआ। पर यह आधा है। आधी यात्रा हुई; और आधी बाकी है। इसलिए ध्यान का हर प्रयोग उत्सव, अहोभाव में पूरा होना चाहिए। ध्यान के हर प्रयोग के पीछे, शांति ही नहीं, आनंद की रसधार बहनी चाहिए, ताकि तुम नाचो और धन्यवाद दो, और तुम भी कह सकोः कहे कबीर आनंद भयो है, अनहद बाजत ढोल रे। शांति--पहला पड़ाव; आनंद--लक्ष्य, वह अंतिम पड़ाव है। तुम जहां हो वहां अशांति और दुख है। अशाति तो शांति से मिट जाओगे; दुख शांति से न मिटेगा। दुख आनंद से मिटेगा। बुद्ध पहले लक्ष्य की बात करते हैं--शांति, शून्य; दूसरे की बात नहीं करते। बुद्ध का विचार अधूरा है। वेदांत, शंकर, पूर्ण की

बात करते हैं--आनंद की; विधायक अहोभाव की। इसलिए वेदांत बुद्ध के विचार से गहरा जाता है और पूरा है। बुद्ध पहले कदम हैं, शंकर मंजिल हैं। और कबीर ने दोनों को जोड़ दिया है। कबीर संगम हैं।
कबीर कहते हैंः सुन्न महल में दियना बारि ले। यह सुन्न शब्द बुद्ध से आया है, क्योंकि बुद्ध शून्य शब्द का बहुत प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं, शून्य ही सब कुछ है। शून्यता ही सिद्धावस्था है। यह सुन्न बुद्ध से आया है। सुन्न महल में दियना बारि ले। और दियना भी बुद्ध से आया है। क्योंकि वे भी कहते हैं कि दीया जला लो। आखिरी क्षण भी, मरते वक्त भी, अंतिम वचन भी उन्होंने--अप्प दीपो भव--आनंद को कहा कि तू अपना दीया जला ले; अपना दीया खुद हो जा! ये दोनों शब्द बुद्ध से आए हैं। सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे। लेकिन शेष हिस्सा वेदांत का है। यह पहला कदम बुद्ध, दूसरा कदम शंकर।
जागू जुगुत सौं रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।।

आज इतना ही।

घूंघट के पट खोल
दूसरा प्रवचन

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

सूत्र
मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गांठ गठियायो, बारबार बाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाए मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले।।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसके बाद वे दो सप्ताह तक चुप रहे। कथाएं कहती हैं कि सारा अस्तित्व खिन्न हो गया, उदास हो गया। और देवताओं ने आकर उनके चरणों में प्रार्थना की कि आप बोलें, चुप न हो जाए; क्योंकि बहुत-बहुत समय में कभी मुश्किल से कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। और करोड़ों आत्माएं भटकती हैं प्रकाश के लिए। वह प्रकाश आपको मिल गया है; उसे छिपाए मत, उसे दूसरों को बताए, ताकि दूसरे अपने अंधेरे मार्ग को आलोकित कर सकें। जो खोज लिया है उसे अपने साथ मत डुबाए, उसे दूसरों के साथ बांट लें, ताकि उन्हें भी कुछ स्वाद मिल सके। चुप न हों, बोलें!
कहते हैं, बुद्ध ने कहाः अगर बोलूंगा, तो जो मैं कहूंगा वह समझ में न आएगा। इसलिए चुप रह जाना ही उचित है। क्योंकि जो भी मैं बोलूंगा वह दूसरे ही लोक का होगा। और उसका कोई स्वाद न हो तो समझ में न आएगा। अनुभव के सिवाय समझ का और कोई मार्ग नहीं है; इसलिए चुप रह जाना ही उचित है।
पर देवताओं ने फिर आग्रह किया और कहा कि कुछ की समझ में आएगा। थोड़ा सा
भी धक्का लगा उस यात्रा पर--न भी समझ में आया, थोड़ा सा रस पदा हुआ, थोड़ा सा कुतूहल जगा, जिज्ञासा जन्मी, मुमुक्षा पैदा हुई--तो भी उचित है।
बुद्ध ने कहाः जो सच मैं जिज्ञासु है वे स्वयं ही खोज लेंगे, कुछ कहने
की जरूरत नहीं; और जो जिज्ञासु नहीं हैं; वे सुनेंगे ही नहीं; उन्हें कहने में कुछ सार नहीं।
लेकिन देवताओं के सामने बुद्ध हारे, क्योंकि देवताओं ने कहा कि कुछ ऐसे हैं, जो बिल्कुल सीमांत पर खड़े हैं। अगर न सुनेंगे तो खोजने में बहुत समय लग जाएगा; अगर सुन लेंगे तो छलांग लग जाएगी। और फिर वे सुनें या न सुनें, जो आपने पाया है आप बांटें।
क्योंकि करुणा प्रज्ञा की छाया है। जो जान लेगा वह महाकरुणा से भर जाएगा। वह इसलिए नहीं बोलता है कि बोलना उसकी कोई मजबूरी है। हमारे बोलने और उसके बोलने में फर्क है। हम बोलते हैं इसलिए कि बिना बोले नहीं रह सकते। बिना बोले रहेंगे तो बड़ी बेचैनी होगी। बोलना हमारा रेचन है, कैथार्सिस है। बोल लेते हैं, निकल जाता है।
इसलिए तो लोग अपने दुख की चर्चा करते रहते हैं। क्योंकि जितनी दुख की चर्चा कर लेते हैं, उतना दुख हल्का हो जाता है। जितनी बार कर लेते हैं, उतना बिखर जाता है। न बात करने को मिले कोई, तो दुख भीतर-भीतर इकट्ठा होगा, घाव बनेगा।
मनसविद कुछ भी नहीं करते, सिर्फ बीमारों की बात सुनते हैं। सुन-सुन कर
ही उन्हें ठीक कर देते हैं। सुनने से मन हल्का हो जाता है। जो बोल रहा है, वह खाली हो जाता है।
हम बोलते हैं इसलिए कि बोलना हमारी रुग्ण दशा में जरूरी है, अन्यथा हम
जी न सकेंगे। कुछ भी न बोलने को हो, तो हम व्यर्थ की बातें बोलते हैं। कहते हैं, मौसम कैसा है! वह दूसरे को भी दिखाई पड़ रहा है, हमको भी दिखाई पड़ रहा है। सुंदर सूरज उगा है! दूसरे के पास भी आंखें हैं, कहने की कोई जरूरत नहीं।

ऐसा हुआ कि एक सम्राट ने अपने वजीर से कहा कि मैं जानना चाहता हूं, इस राजधानी में अंधे कितने हैं, तुम उनकी गिनती करो।
वजीर ने कहाः सचमुच अंधों को जानना चाहते हैं या सिर्फ जिनकी आंखें बंद हैं, उनको?
सम्राट ने कहाः सचमुच जो अंधे हैं! ... क्या मतलब? ... फर्क है क्या दोनों बातों में?
उस वजीर ने कहाः अंधों का पता लगाना हो तो गांव में वैद्य ही खबर दे देंगे, अस्पताल से पता चल जाएगा। वह कठिन बात नहीं है। लेकिन, अगर सच में अंधे जानने हों तो जरा मुश्किल है। समय चाहिए।
वजीर दूसरे दिन सुबह जाकर बाजार में बैठ गया! उसने आस-पास जूते फैला लिए। जूते सीने लगा, ठोकने लगा! जो भी आदमी निकला, वही पूछे, क्या कर रहे हैं? वह उसका अंधे में नाम लिख ले। क्योंकि जो वह कर रहा है, वह देख रहा है। पूछना क्या है--क्या कर रहे हैं! खुद सम्राट तक का नाम अंधों में आ गया। क्योंकि सम्राट भी जब निकला दोपहर में तो उसने पूछा, यह क्या कर रहे हो? उसने तत्क्षण नाम लिख लिया। जब फेहरिस्त आई तो बहुत लंबी थी। सिर्फ कुछ बच्चों को छोड़ कर, जो इधर से निकले थे और उन्होंने जरा भी फिकर न की और न पूछा, बाकी सब अंधे थे।
अगर कोई हमारी बातचीत पर ध्यान दे तो बहुत हैरान होगा। हम वे बातें कर रहे हैं जिनका कोई भी अर्थ नहीं है। जो दूसरे को भी दिखाई पड़ रहा है, वह हम दिखा रहे हैं। जो दूसरे को भी पता है, वह हम बता रहे हैं। जो दूसरे ने भी सुन लिया है, वह हम सुना रहे हैं। जो दूसरे ने भी सुन लिया है, वह हम सुना रहे हैं। जो दूसरे ने भी पढ़ लिया है, वह हम समझा रहे हैं। हम क्या कर रहे हैं? और दूसरा हमें बरदाश्त कर रहा है--सिर्फ उस आशा में कि थोड़ी देर बाद जब हम चुप होंगे तो वह भी अपना रेचन करेगा। हम बैठे रहते हैं तब, सुनते रहते हैं तब तक, जब तक हमें मौका न मिले। बस मौके की बात है। जब हम सुनते हैं, हम सुनते नहीं--क्योंकि हम बोलने को तैयार हैं। दूसरा भी तुम्हें जब सुनता है, सुनता नहीं--वह भी बोलने को तैयार है। हम सब बोलनेवाले हैं, सुनने वाला कोई है ही नहीं।
अगर तुम दो आदमियों की बातें बड़े साक्षीभाव से सुनो तो तुम हैरान होओगे, वह एकालाप है, वार्तालाप नहीं! वे एक-एक अपने-अपने से बोल रहा है। दोनों सिर्फ जुड़े हुए मालूम पड़ते हैं। वह बहाना है। तुम कोई शब्द चुन लेते हो दूसरे की बातचीत से, उस शब्द की खूंटी पर अपनी टांग देते हो और चल पड़ते हो। तुम्हारी गाड़ी किसी और तरफ जाती है। इसलिए तो दो व्यक्ति के बीच विवाद आसान है, संवाद मुश्किल है। संवाद तो तभी हो सकता है, जब सुनना भी आता हो। हमें सिर्फ बोलना आता है। तो अगर हम परमात्मा के द्वार पर भी जाते हैं तो वहां भी बोलते हैं। वहां भी उसको हम बोलने का मौका नहीं देते।
वास्तविक प्रार्थना जब तक शुरू होती है तब तुम उसे बोलने का मौका दो। तुम्हारे बोलने की वहां जरूरत क्या है? तुम जो भी कहोगे, परमात्मा पहले से जानता है। तुम कृपा करके चुप हो जाओगे थोड़ा उसे बोलने दो।
लेकिन चुप होना हमें आता नहीं। चुप होना बहुत कठिन है। बीमार चित्त
के साथ चुप होना एकदम कठिन है। स्वस्थ चित्त के साथ बोलना कठिन हो जाता है। क्योंकि जब तुम शांत हो जाते हो, तब कैसे बोलोगे? जब तुम शांत हो जाते हो, तब एक-एक शब्द को बोलना कठिन हो जाता है।
संतों ने बोला है--करुणा के कारण, लेकिन बोलना बड़ी कठिनाई है। भीतर जो गहन शून्य में खड़े हो गए हैं, वहां एक शब्द बनाना भी मुश्किल है। फिर भी उनकी करुणा है कि वे शब्द बनाते हैं। उनकी करुणा है कि वे जानते हुए शब्द देते हैं कि शब्द से बहुत कुछ होगा नहीं। उनकी करुणा है वे तुम्हारे चेहरे को देखते हैं कि तुमने शब्द तो सुन लिया, अर्थ तुम्हारी समझ में नहीं आया। फिर भी बोले जाते हैं इस आशा में कि शायद संयोग बन जाए, निमित्त बन जाए और कोई जग जाए।
कबीर के ये वचन बहुत महत्वपूर्ण हैंः मन मस्त हुआ तक क्यों बोले!
जब मस्ती आ जाएगी, जब उस ज्ञान की मदिरा उतरेगी, और जब तुम इतने आनंदित
हो जाओगे... जब मन मस्त हुआ तब क्यों बोले, ... तब बोलोगे कैसे! तब बोलना होगा ही क्यों!

इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक तुम मस्त नहीं हो तभी तक बोल रहे हो। आदमी आनंदित होता है तो चुप होता है, दुखी होता है तो बोलता है। आदमी स्वस्थ होता है तो स्वास्थ्य की चर्चा नहीं करता; बीमार होता है तो बीमारी की बड़ी चर्चा करता है। जब तुम पूरे स्वस्थ होते हो तब तुम शरीर की बात ही भूल जाते हो। तब शरीर की बात ही क्या करनी, शरीर का पता ही नहीं चलता।
च्चांगत्सु कहता है, जब जूता ठीक आ जाता है पैर पर तो भूल जाता है। जब जूता काटता है, तब पैर की याद आदती है। जब तुम्हारा सिर स्वस्थ होता है तब तुम सिर को भूल जाते हो। सच तो यह है, तुम बेसिर हो जाते हो। जब सिर में दर्द होता है तभी सिर का पता चलता है, बीमारी का बोध होता है।
इसलिए संस्कृत में दुख के लिए जो शब्द है, वही शब्द ज्ञान के लिए है। वेदना दुख का अर्थ भी रखता है और वेदना वेद का अर्थ भी रखता है--ज्ञान का। दुख का ही बोझ होता है। आनंद तो, जैसे शराब हो--सब बोध खो जाता है।... होश ही दुख का होता है। पैर में कांटा चुभता है तो पैर का पता चलता है, कांटा न चुभे तो पैर का पता नहीं चलता। पीड़ा का बोध है, आनंद का क्या बोध? आनंद के साथ तो हम इतने एक हो जाते हैं कि बोध किसको होगा, किसका होगा! दुख के साथ फासला होता है।
... इसलिए ज्ञानियों ने कहा हैः आनंद तुम्हारा स्वभाव है, दुख तुम्हारा स्वभाव नहीं; क्योंकि जिसके साथ हम एक नहीं हो पाते, वह हमारा स्वभाव कैसे होगा? पैर में कांटा लगा होना अस्वाभाविक है, इसलिए दुखता है। जब पैर में कांटा नहीं है--यह स्वाभाविक है--सब दुख खो गया, पैर भी खो गया! जितने-जितने तुम स्वस्थ होते जाओगे, उतना-उतना कहने को क्या बचेगा? जब कोई परिपूर्ण स्वस्थ होता है--शरीर, मन, आत्मा, सब शांत हो जाते हैं--तब कहने को भी कुछ भी नहीं बचता।
मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
बोलना दुख के जगत का अंग है। और इसलिए जब कोई आदमी विक्षिप्त हो जाता है, तो चौबीस घंटे बोलता रहता है। सिर्फ विक्षिप्त बोलता है चौबीस घंटे! रात में भी बड़बड़ाता है, दिन में भी बोलता रहता है। एक छोर विक्षिप्त का है, जब वह चौबीस घंटे बोलता है; दूसरा छोर विमुक्त का है, जब वह बिल्कुल चुप हो जाता है। उसके घर में कोई भी नहीं होता, सन्नाटा होता है। उसके घर में कोई आवाज नहीं होती, कुछ कहने को नहीं होता, कोई शोर नहीं उठता, एक पर शून्यता की लयबद्धता होती है।
विक्षिप्त आदमी को देखो, पागल को ठीक से अध्ययन करो, तो तुम अपने को भी पागल पाओगे। क्योंकि तुम बोलो, न बोलो, भीतर तुम्हारी बातचीत जारी रहती है।
सूफियों के पास एक विधि है, जो भीतर की बातचीत को रोकने के काम के काम में लग जाती है। और सूफी कहते हैं कि जो इंन्टनल डायलाग है, वह जो भीतर बात चल रही है, वही बाधा है, परमात्मा और तुम्हारे बीच। जैसा ही तुम वहां चुप हो गए, सब परदे गिर गए। वही घूंघट है। और भीतर तुम चर्चा किए ही जाते हो। भीतर एक क्षण भी ऐसा नहीं आता, जब चर्चा बंद होती हो। या तो तुम बाहर बात करते हो। अगर बाहर कोई न मिले तो भीतर बात करते हो; लेकिन बात जारी रहती है।
इसे थोड़ी होशपूर्वक जांचने की कोशिश करना। यह जो भीतर वार्तालाप चल रहा है, यही परदा है। और इसके तुम सजग, साक्षी हो जाना। दुखना। एक दूरी निर्मित करना। तुम खुद नहीं कर रहे हो यह वार्तालाप, यह तुम्हारा मन कर रहा है। तुम दूर होकर देख सकते हो। तुम एक साक्षी हो सकते हो। जब तुम देखने वाले बन जाओगे, तुम धीरे-धीरे पाओगे कि भीतर का वार्तालाप बंद होने लगा। कभी-कभी बीच में अंतराल के क्षण आ जाएंगे। कभी बादल हट जाएंगे, खाली आकाश दिखाई पड़ेगा। उसी खाली आकाश में पहली समाधि का अनुभव होगा।
तुम बादल नहीं हो, तुम शून्य आकाश हो। बादल आते हैं, चले जाते हैं-- शून्य आकाश सदा वहीं है। बादल तुम्हारा स्वभाव नहीं है, शून्य आकाश तुम्हारा स्वभाव है। जो सदा रहता है, जो कभी नहीं बदलता, वही स्वभाव है। शब्द तुम्हारा स्वभाव नहीं, शून्यता तुम्हारा स्वभाव है। शब्द तो आते हैं, बादलों की तरह चलते जाते हैं, उठते हैं लहरों की तरफ, खो जाते हैं। तुम शब्द नहीं हो। लेकिन तुम चौबीस घंटे शब्दों में खोए हुए हो। जैसे हम किसी

आदमी को आकाश देखने भेजें और वह बादलों की खबर लेकर आ जाए--ऐसे ही जब भी भीतर जाते हो, शब्दों को लेकर बाहर आ जाते हो। आकाश तक पहुंच ही नहीं पाते। तुम्हारी जब तक आकाश की तरफ पहुंच न हो, तब तक गगन-गुफा कैसे खुलेगी?
तब तक कैसे झरेगा अजर अमृत? तब तक कैसे डूबोगे तुम रसधार में? और जब कोई उस रसधार में डूब जाता है तो कबीर ठीक ही कहते हैंः मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।... जब आनंद आ गया, तो चुप्पी सध जाती है।
इसलिए संतों को बड़ी कठिनाई है बोलने की। श्रम से बोलते हैं। तुम श्रम
से अपने को चुप रखते हो। अगर तुमसे कहा जाए कि कोई मर गया और दो क्षण शांति रखो, तो दो क्षण ऐसे लगते हैं जैसे दो वर्ष। बड़े लंबे मालूम पड़ते हैं। लगता है, कोई भूल-चूक कर रहा है... बंद करो। दो क्षण हो गए होंगे कब के।... और ऊपर से तुम चुप भी हो जाते हो। भीतर तो सब चलता ही रहता है, भीतर जरा भी चुप्पी नहीं होगी।
... दो क्षण तुम चुप नहीं रह सकते।... कैसी तुम्हारी योग्यता! ... कैसी तुम्हारी समझ! ... काहे की कुसलात! और दो क्षण तुम चुप नहीं रह सकते हो तो तुम जान लेना कि तुम विक्षिप्त हो। तुम करीब-करीब पागल हो।
पागल और तुममें जो फर्क है, वह मात्रा का है। तुम अभी अपने पागलपन को भीतर दबाए हो, वह कभी भी फट सकता है। वह तैयार हो रहा है। वह मवाद की तरह भीतर इकट्ठा हो रहा है; कभी भी मुंह मिल जाएगा, घाव हो जाएगा और वह फूट पड़ेगा। डिग्रीज के फर्क हैं। कोई नब्बे डिग्री का पागल है, कोई पच्चानबे डिग्री का, कोई सौ डिग्री का। सौ डिग्री पर विस्फोट हो जाता है; तब लोग उन्हें पागलखाने पहुंचा आते हैं।
लेकिन तुम दस मिनट अपने घर के कोने में बैठकर मन में जो भी चलता हो, उसे एक कागज पर लिख लेना। तो तुम जो भी पाओगे, तुम अपने मित्र को--निकटतम मित्र को भी बताने को राजी न होओगे। क्योंकि वह बिल्कुल पागलपन मालूम पड़ेगा। जो तुम्हारे मन में चलता है, उसे लिखना कागज पर और बेईमानी मत करन-- जो चलता हो, वही लिखना। तुम बड़े हैरान होओगेः मन कैसी छलांगें लगा रहा है। ... रास्ते से गुजरते हो, कुत्ता दिखाई पड़ता है। कुत्ता दिखाई पड़ा कि यात्रा शुरू हो गई। मित्र का कुत्ता याद आ गया। मित्र के कुत्ते की वजह से मित्र याद आ गया। मित्र की वजह से मित्र की पत्नी याद आ गई। और चल पड़े तुम! अब इस कुत्ते से उसको कोई लेना-देना नहीं। पर भीतर की यात्रा शुरू हो गई; अंतरंग वार्तालाप, इंटरनल डायलाग चल पड़ा।
अगर तुम किसी से कहोगे कि कुत्ते को देखकर यह सब हुआ... । यह भी हो सकता
है कि मित्र की पत्नी के प्रेम में पड़ गए, शादी हो गई, बाल-बच्चे हो गए। उनका तुम विवाह कर रहे हो!
तुमने शेखचिल्लियों की कहानियां पढ़ी हैं? वह तुम्हारी ही कहानियां हैं। मन शेखचिल्ली है। यह मत समझना कि वे बच्चों को बहलाने के लिए लिखी गई कहानियां है, यह तुम चौबीस घंटे कर रहे हो। यही तंद्रा है, यही नींद है। जिसको कबीर कहते हैंः संतों जागत नींद न कीजै।
जागे तुम ऊपर-ऊपर से लग रहे हो, भीतर बड़े सपने चल रहे हैं। पर्त दर पर्त सपनों ही तुम्हें घेरे हुए हैं। पर्त दर पर्त बादलों की आकाश को घेरे हुए है। और यह पर्त दर पर्त जो पागलपन है, इसे तुम दूसरे पर उलीचते रहते हो; इसे तुम दूसरों पर फेंकते रहते हो। वही तुम्हारा वार्तालाप है।
मन मस्त हुआ तब क्यों बोल।... लेकिन जब तुम मस्त हो जाओगे, नील गगन हो जाओगे, खुलेगी गगन की गुफा और बरसेगी अजर धार--तब तुम क्यों बोलोगे! तब तुम चुप हो जाओगे।
फिर भी जो चुप हो गए हैं, वे बोले हैं। उनके बोलने और तुम्हारे बोलने में बुनियादी फर्क है गुणात्मक फर्क है, क्वालिटेटिव फर्क है। वे बोलते हैं इसलिए कि उन्होंने कुछ जाना है। तुम बोलते हो इसलिए कि तुम विक्षिप्त हो। वे बोलते हैं इसलिए कि बोलने से वे कुछ देना चाहते हैं। तुम बोलते हो इसलिए कि तुम बोलने से कुछ रेचन करना चाहते हो।
तुम्हारा बोलना दूसरे के लिए अहितकर है, क्योंकि तुम बीमारी फेंक रहे हो। उनका बोलना दूसरे के लिए मर कल्याण है, क्योंकि वे अपना आनंद बांट रहे हैं। उनके शब्द-शब्द में भीतर की झनकार होगी। उनके शब्द-शब्द में भीतर का रस थोड़ा सा भरा आ जाएगा। उनके शब्द-शब्द में थोड़ी सी सुगंध साथ चली आएगी।

तुमने अगर फूल भी हाथ में रखे तो हाथों में सुगंध आ जाती है। तुम अगर बगीचे से गुजर भी गए तो फूलों की गंध तुम्हारे वस्त्रों में आ जाती है।
संत के शून्य से जब कोई शब्द गुजरता है तो थोड़ी सी शून्यता, थोड़ी सी ताजगी उस भीतर के संसार से ले आता है। इसलिए संतों को समझने के लिए बस सुनना काफी है, विचारना जरूरी नहीं है।
नानक निरंतर कहते हैं कि तीन चीजें हैं महत्वपूर्ण। एक है परमात्मा, जिसका हमें कोई पता नहीं। उस तक पहुंचने के लिए द्वार है गुरु। लेकिन गुरु का भी हमें कोई पता नहींः कौन गुरु? उस तक पहुंचने का द्वार है, साधु-संगत-- साधुओं का संग साथ। जहां भले लोग हों, जहां भली बात होती हो, जहां उस संसार की कुछ चर्चा चलती हो--साधु संगत--वहां बैठ कर सुनना। उसी... सुनते-सुनते... साधु-संगत में गुरु मिल जाएगा। और गुरु मिल गया तो तुम मार्ग पर आ गए। साधु-संगत से मिलेगा गुरु, गुरु से मिलेगा परमात्मा।
बड़ा मूल्य है--जहां भली बात चलती हो, वहां बैठकर सुन लेने का भी बड़ा मूल्य है।
और समझोगे कैसे तुम संतों को? समझ तो तभी होती है जब तुम भी उसी अवस्था में पहुंचोगे। रस ले सकते हो। उनकी वाणी को अपने भीतर प्रवेश हो जाने दे सकते हो। तुम ग्राहक भाव रख सकते हो--खुला मन--ताकि उनके शब्द तुम्हारे भीतर चल जाए। शायद उनके शब्द जिस अज्ञात लोक से आ रहे हैं, उसकी थोड़ी सी चोट तुम्हारे भीतर जब जगे।
संतों के पास अगर तुम मस्ती सीख लो, तो तुमने सीख लिया।
मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पाया गांठ गठियायो, बार-बार बाको क्यों खोले।
हीरा मिल गया, गांठ में बांध लिया, अब बार-बार उसको क्या खोलना?
... तुम बोलते हो। अगर रास्ते पर तुम्हें हीरा मिला जाए, तुम गांठ तो गठियाओगे, लेकिन बार-बार खोल कर देखोगे।... क्यों? तुम्हें संदेह है, तुम्हें पक्का भरोसा नहीं है कि हीरा मिल सकता है, कि यह हीरा है, और मुझे मिल गया। तुम्हें अपने पर भी भरोसा नहीं है, तुम्हें हीरे पर भी भरोसा नहीं है। तुम संदेहग्रस्त हो, इसलिए बार-बार खोल कर देखते हो।
जहां श्रद्धा है, वहां संदेह कैसा? जहां श्रद्धा है, वहां हीरा मिला, गांठ गंठाया--बाको बार-बार क्यों खोले?
तो जब, बुद्ध, कबीर, नानक उपलब्ध हो जाते हैं, मिल गया हीरा, उसको गांठ गठिया लिया, अब उसको बार-बार क्या खोलना है... वे उसकी चर्चा भी नहीं करते। वे उस संबंध में तो चुप ही रहते हैं, जो उन्होंने पा लिया है। अगर वे चर्चा भी करते हैं तो चर्चा परोक्ष है।
ऐसा हुआ, एक सूफी फकीर बायजीद के पास एक औरत को लाया गया। वह बहुत मोटी थी। उसके पति ने कहा कि इससे बच्चे पैदा नहीं होते, आपकी कृपा हो जाए।
बायजीद बोले, बच्चे! कृपा! तुम पागल हुए हो? चालीस दीन में यह मरनेवाली है। यह औरत बचेगी नहीं। साफ देख रहा हूं इसकी माथे की रेखा। इसके लिए हम क्या करें। कुछ भी नहीं किया जा सकता।
पति-पत्नी उदास लौटे। चालीस दिन बाद मौत! पत्नी खाट से लग गई, खाना- पीना बंद हो गया। लेकिन चालीस दिन आए और गुजर गए, और वह नहीं मरी। फिर बायजीद के पास जाना पड़ा कि अच्छी मुसीबत खड़ी कर दी। चालीस दिन मौत में गुजरे, रोते गुजरे... और यह पत्नी तो जिंदा है!
बायजीद ने कहाः अब जाओ, इसको बच्चा को सकेगा, सिर्फ इसका मोटा पा कम करना था। वह मौत की बात तो दवा थी।
यह इनडायरेक्ट, परोक्ष हुआ। वह मानने वाली नहीं थी--अगर इससे कहा जाए
कि तू मोटापा कम कर। यह सीधी बात नहीं हो सकती। थी। मोटापा कम करने को तो बहुत वैद्य कह चूके थे। फकीरों के पास का.ेई आता ही तब है जब चिकित्सक और वैद्य चुक जाते हैं, तभी तो कोई आशीर्वाद के लिए जाता है। वह आखिरी उपाय है।
तो बायजीद ने देखा कि बात तो साफ है, इतनी मोटी स्त्री को बच्चे नहीं
हो सकते। और मोटापा यह कम करेगी नहीं। मौत की बात तो झूठी थी। लेकिन हम इतने झूठे हैं कि झूठ ही हम पर काम करता है।

तो संत हीरे की बात नहीं करते। वे तो कुछ और ही बात करते हैं जिससे हीरे के प्रति रस लग जाए। हीरा तो तुम्हें दे भी दें तो तुम पहचान न सकोगे; क्योंकि पहचान के लिए अनुभव चाहिए।
ऐसा हुआ, सूफी फकीर हुआ झुन्नून एक आदमी उसके पास आया और उसने झुन्नून
को कहा कि यह सब बकवास है। मैं कई सूफियों के पास गया, यह सब बातचीत है, कुछ नहीं पाया। वह फलां सूफी है, धोखेबाज है। और फलां सूफी है, उसके आचरण का कोई भरोसा नहीं। और एक सूफी है, वह बातचीत तो ऊंची करता है, लेकिन अनुभव उसे बिल्कुल नहीं हुआ।
झुन्नून ने कहाः बात पीछे करेंगे, जरा मुझे जरूरत है एक काम की, तुम थोड़ा-सा काम कर दो। यह एक पत्थर मेरे पास है, तुम चले जाओ बाजार में, सोने और चांदी की दुकानों पर, अगर कोई इसे एक सोने के सिक्के में खरीद ले तो तुम बेच आओ।
वह आदमी गया। बाजार पास ही था। सोने-चांदी की दुकानों पर गया, कोई उसे
एक सोने के सिक्के में लेने को राजी नहीं था। ज्यादा से ज्यादा एक चांदी का सिक्का कोई देने को राजी हुआ था--वह भी बड़े पसोपेश में! वह आदमी लौट आया। उसने कहा कि यह पत्थर बिल्कुल बेकार है! सोने की बात तो छोड़ो, उस वहम में मत रहो, चांदी का एक सिक्का मिलता है। और वह भी आदमी संदिग्ध है, वह भी पक्का नहीं है कि ले या न ले।... क्या करना है?
झुन्नुन ने कहा कि जब तुम जौहरी की दुकान पर चले जाओ। और बेचना मत पत्थर को, सिर्फ दाम पूछ कर आना। वह गया। जौहरी एक हजार सोने के सिक्के देने को तैयार था। जब वह बेचने को राजी न हुआ तो वह दस हजार सोने के सिक्के देने को तैयार हो गया। तब भी वह बेचने को राजी न हुआ तो जौहरी ने कहा, तुम कितना चाहते हो, तुम बोलो? लेकिन पत्थर वापस न ले जाने देंगे? उसने कहा, बेचने को कहा ही हनीं उसने, जिसका यह पत्थर है; सिर्फ दाम पूछने को कहा है। वापिस लौटकर आया। कहने लगा, बद हो गई! अच्छा हुआ कि मैं बेच नहीं आया, नहीं तो एक चांदी का सिक्का मिलता। दस हजार तो वह देने को तैयार है और पूछता है, तुम बोलो!
फकीर ने कहा, पत्थर बेचना नहीं है, सिर्फ तुम्हें इसलिए भेजा था कि तुम पता लगा लो। हीरे की पहचान के लिए जौहरी होना जरूरी है। तुम जौहरी हो कि सूफी की पहचान कर सको?
चांदी-सोने के दुकानदार को हीरे की क्या पहचान। फिर भी थोड़ा बहुत ख्याल होगा कि पत्थर रंगीन है, थोड़ा बहुत चमकदार है, तो चलो खरीद लो, शायद किसी काम आ जाए। और कहीं तुम शाक-सब्जी की दुकान पर चले जाओ इसे बेचने, तो यह कहेगाः दो पैसा में दे जाओ, शाक-सब्जी तौलने के काम आ जाएगा।
उसने कहा, पत्थर वापस रख दो, जौहरी चाहिए हीरे की पहचान के लिए।
कौन पहचानेगा सूफी को? कौन पहचानेगा संत को, साधु को? हीरा तुम्हें दिया नहीं जा सकता। तुम पहचानोगे नहीं, तुम गंवा दोगे--या बच्चों को खेलने को दे दोगे--
आज जो कोहिनूर है, वह गोलकोंडा में एक गरीब आदमी के घर में बच्चों का खिलौना था, उसको खेत में मिल गया था, और बच्चे उससे खेलते थे।
हीरे की पहचान जौहरी कोः ज्ञान की पहचान ज्ञानी को। हीरा तो तुम्हें दिया नहीं जा सकता। दे भी दें तो तुम उसका दुरुपयोग करोगे। इसलिए कबीर कहते हैंः
हीरा पायो गांठ गठियाओ, बार बार क्यों खोले।
और खुद को तो कोई संदेह नहीं है, क्योंकि वह जो अनुभूति है, संदिग्ध है।
लोग मुझसे पूछते हैं, लोग सदा से पूछते रहे हैं कि यह कैसे पता चलेगा
कि ध्यान लग गया? यह कैसे पक्का पता चलेगा कि परमात्मा मिल गया? यह कैसे पक्का पता चलेगा कि समाधि है? मैं उनसे कहता हूं कि तुम्हारी खोपड़ी में कोई लट्ठ मार दे, तब तुम्हें कैसे पक्का पता चलता है कि दर्द हो रहा है? उसको तुम किसी और से पूछने जाते हो कि क्यों भाई, मुझे दर्द हो रहा है कि नहीं?
जब तुम्हें दर्द का अनुभव हो सकता है तो तुम्हें आनंद का अनुभव न होगा? जब तुम पीड़ा को पहचान लेते हो तो तुम आनंद को पहचानने की खबर दे दिए।

क्योंकि पीड़ा उसी का तो अभाव है। जब तुम्हें बीमार का पता चल जाता है तो स्वास्थ्य है तो स्वास्थ्य का भी पता चल ही जाएगा। जब नर्क को तुम पहचान लेते हो तो स्वर्ग को भी पहचान लोगे। यह पूछना न पड़ेगा कि जो मुझे मिला है, वह मिला है या नहीं?
नहीं, जब हीरा मिलता है--हीरा पायो, गांठ गठियायो, बार बार बाको क्यों खोले--संदेह तो कुछ होता नहीं। वह अनुभव असंछिग्ध है।
परमात्मा का अनुभव संदेहातीत है। जब होता है, बस हो गया। फिर सारी दुनिया कहे कि नहीं हुआ तो भी कोई सवाल नहीं। सारी दुनिया सिद्ध कर दे कि नहीं हुआ तो भी कोई सवाल नहीं सारी दुनिया कहे कि ईश्वर नहीं है, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। जब तुम्हें अनुभव हो गया--तो वही प्रमाण है।
परमात्मा का अनुभव सेल्फ-एविडेंट है, स्व-प्रमाण है। उसके लिए किसी
और प्रमाण की जरूरत नहीं है। वह खुद ही अपना प्रमाण है। हो गया, हो गया। लेकिन जब तक नहीं हुआ है, तब तक बड़ी मुश्किल है। कोई दूसरा अपना अनुभव तुम्हारे हाथ में रख दे, तुम न पहचान सकोगे; क्योंकि पहचान तो केवल अपने ही अनुभव की होगी, दूसरे के अनुभव की नहीं होगी। इसलिए कबीर लाख सिर पटकें, तुम्हें न आएगा; भरोसा तो तभी आएगा, जब तुम्हें घटना घट जाएगी।
और तब हीरा पायो गांठ गठियायो, बारबार बाको क्यों खोले।
हलकी थी तो चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।
तराजू का पलड़ा जब तक हलका रहता है, तब तक ऊपर रहता है। जैसे-जैसे भारी होने लगता है, नीचे उतरने लगता है। और जब पूरा ही भर जाता है तो जमीन से लग जाता है, फिर तौलना बंद हो जाता है।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू पूरी भाई तब क्यों तोले।
... फिर तौलना ही बंद हो जाता है।
अभी तुम्हारी जिंदगी में तौलना ही तालौना चलता है। तौलने का अर्थ हैः तुलना कम्पेरिजन। तुम अभी जब भी कुछ सोचते हो, हमेशा तुलना में सोचते हो।
एक सौंदर्य की प्रतियोगिता थी। देश की बीस सुंदरियां इकट्ठी थी।
उनमें से चुनाव होना था कि कौन पूरे देश की प्रथम सुंदर होगी। निर्णायकों ने मुल्ला नसरुद्दीन को भी निमंत्रित कर लिया था। बढ़ा और अनुभवी आदमी था। जिंदगी के बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे। बहुत स्त्रियों के संबंध, विवाह, तलाक-- सब देखा हुआ था। पहली युवती आई, उसने कहा--फू! दूसरी आई, आई, तीसरी आई, वह फू- फू कहता रहा। एक से एक सुंदर स्त्रियां थीं, तय करना मुश्किल था कि कौन किससे ज्यादा है। जिन्होंने उसे बुलाया था, वे थोड़े संदिग्ध हुए। बीसवीं युवती आई, तब भी उसने कहा--फू! तो मित्रों ने पूछा, कि नसरुद्दीन! कोई भी स्त्री पसंद नहीं आती? फू-फू किए जा रहे हो!
उसने कहाः इन स्त्रियों को नहीं कह रहा हूं, अपनी औरत को कह रहा हूं!
वे तुलना कर रहे हैं।
तुम्हारी जिंदगी तुलना से भरी है।
... तुम अमीर हो... सच में तुम अमीर हो? ... तुम अमीर हो नहीं सकते। हां, किसी गरीब की तुलना में अमीर हो, किसी अमीर की तुलना में गरीब हो।
तो अमीर से अमीर भी गरीब बना रहता है; क्योंकि कोई और है जो ज्यादा अमीर है। तुलना से छुटकारा नहीं हो सकता। तुम दस को पीछे छोड़ आए हो, लेकिन दस तुम्हारे सदा आगे हैं।
... तुम सुंदर हो? ... हां, किसी की तुलना में होओगे। लेकिन तुम कुरूप भी
हो, क्योंकि किसी और की तुलना चल रही है।
... तुम स्वस्थ हो? ... समझदार हो?
हर वक्त तुलना चल रही है। जब तुम कहते हो कि मैं स्वस्थ हूं, तब भी तुलना; जब तुम कहते हो कि सुंदर हूं, तब भी तुलना।
तुलना के साथ तुम कभी शांत न हो सकोगे, क्योंकि कोई न कोई आगे बना ही रहेगा। ऐसा असंभव है। और जीवन इतना जटिल है कि हो सकता है एक चीज में तुम सबसे ज्यादा आगे पहुंच जाओ--तुम सबसे ज्यादा धन इकट्ठा कर लो...
हैदराबाद के निजाम के पा शायद सबसे ज्यादा धन था दुनिया में। बोलकुंसा के इतने हीरे-जवाहरात इकट्ठे कर लिए थे। उनसे बड़ा धनी आदमी दूसरा नहीं था। वर्ष में एक बार जब वह अपने सब हीरे-जवाहरातों को रोशनी दिखाने के लिए निकालते थे, तो सात छतों की जरूरत पड़ती थी उनको फैलाने के

लिए। चोटी पर थे। लेकिन जब रात सोते थे, तो एक पैर एक बड़ी मटकी में--जिसमें नमक भरा हो--उसमें डालकर और बांध कर सोते थे। क्योंकि भूत से उन्हें बहुत डर लगता था। और यह भूत से बचने की तरकीब थीः नमक पास हो तो भूत हमला नहीं करता। इस भय के कारण, इस भूत के भय के कारण वे कमजोर से कमजोर, गरीब से गरीब नौकर से भी दीन थे। नौकर भी उन पर हंसते थे कि यह क्या मालिक, आप और ऐसे भयभीत। हम नहीं डरते, वहां का भूत। यह क्यों इतनी बड़ी कुंडी बांध कर आप सोते हैं? लेकिन पूरी जिंदगी ही वे कुंडी बांधकर सोते रहे। उस भूत के भय के कारण जीवन उनका बड़ा दुखी था; क्योंकि चौबीस घंटे एक ही चिंता थी और वे मन ही मन में कई बार कहते भी थे कि गरीब से गरीब आदमी होना मैं पसंद करता, मगर निर्भय। दुनिया का सबसे बड़ा अमीर होकर भी क्या सार हैः ऐसा भयभीत हूं। फकीर को, नंगे भिखारी को देख कर भी वे ईर्ष्या से भर जाते थे कि कैसे निर्भय चला जा रहा है, कहीं भी सो जाता है; कोई चिंता नहीं, कोई डर नहीं।
... क्या करोगे? हैदराबाद के निजाम के पास पांच सौ स्त्रियां थीं, इस जमाने में। तुमने कृष्ण का सुना है कि सोलह हजार स्त्रियां थीं। संदेह मत करना; क्योंकि बीसवीं सदी में जब पांच सौ हो सकती हैं तो सोलह हजार कोई ज्यादा नहीं हैं--सिर्फ बत्तीस गुनी।... हो सकती हैं।
पांच सौ स्त्रियां थीं, लेकिन यह आदमी सदा दीन-हीन था। धन था, लेकिन यह आदमी दरिद्र से ईर्ष्या करता था। मौत का भय इतना ज्यादा था कि जीना ही असंभव था।
अमेरिका का बहुत बड़ा करोड़ पति था, एण्ड्रू कारनेगी। जब वह मरा तो उसके सेक्रेटरी ने उससे पूछा कि आप अपार संपदा के मालिक हैं, (दस अरब रुपये वह कैश बैंक में छोड़ कर गया) आप प्रसन्न तो मर रहे हैं? प्रसन्न तो छोड़ रहे हैं इस जगत को?
उसने कहाः कैसी प्रसन्नता? मुझसे असफल आदमी खोजना कठिन है, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये इकट्ठे करने के थे और दस अरब ही कर पाया। हारा हुआ आदमी हूं।
उसने दस अरब इस तरह कहे, जैसे कोई कहेः दस पैसे। लेकिन उसके लिए वे दस पैसे ही थे। क्योंकि जिसके इरादे सौ के रहे हों, दस ही उपलब्ध कर पाए, वह हारा हुआ ही है--नब्बे से हारा हुआ।
तो वह दुखी ही मर रहा है। और उसके सेक्रेटरी ने उसकी जीवन कथा लिखी है। तो उसमें लिखा है कि अगर मुझसे कोई कहता कि बदल लो जगह एण्ड्रू कारनेगी से, तो मैं न बदलता। वह अगर सेक्रेटरी बनना चाहता और मैं मालिक, तो मैं न बनता। क्योंकि उसका सेक्रेटरी होकर जितना मैं प्रसन्न था, उतना वह मालिक होकर नहीं था।
उसने लिखा है कि दफ्तर का चपरासी दस बजे आए, क्लर्क साढ़े दस बजे आए, मैनेजर बारह बजे आए; मैनेजरर्स तीन बजे चले जाए, क्लर्क साढ़े चार बजे छुट्टी पा लें, चपरासी पांच बजे चला जाए। लेकिन एण्ड्रू कारनेगी सुबह सात बजे से जुट जाए दफ्तर में, रात बाहर बजे तक।
कहानियां प्रचलित हैं कि एण्ड्रू कारनेगी अपने बच्चों को नहीं पहचान पाता था, क्योंकि फुरसत ही कहां थी! सात बजे से लेकर बारह बजे रात तक जो जुटा हो, वह क्या बच्चों को पहचानेगा! उसके साथ कभी खेला नहीं, कभी दो बात नहीं की, कभी बैठा नहीं।
तुम धन पा लो तो और हजार चीजें हैं। तुम पद पा लो तो भी हजार चीजें हैं। तुम कुछ भी पा लो, तुम तृप्त न हो सकोगे--जब तक तुलना है, जब तक तराजू तौलता है। जिस दिन तुम कंपेरिजन छोड़ दोगे, उसी दिन तुम मुक्त हो जाओगे। जिस दिन तुम यह ख्याल ही छोड़ दोगे कि दूसरे से तौलना है स्वयं को, उसी दिन दुख खो जाएगा। उस दिन तुम पाओगे कि तुम तुम हो; दूसरे दूसरे हैं; बात खतम हो गई।
एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि तुम्हारे जीवन में इतना आनंद क्यों है? ... मेरे जीवन में क्यों नहीं? उस फकीर ने कहाः मैं अपने होने से राजी हूं और तुम अपने होने से राजी नहीं हो। फिर भी उसने कहा, कुछ तरकीब बताओ। फकीर ने कहा, तरकीब मैं कोई नहीं जानता। बाहर आओ मेरे साथ यह झाड़ छोटा है, वह झाड़ बड़ा है। मैंने कभी इन दोनों को परेशान नहीं देखा कि मैं छोटा हूं, तुम बड़े हो। कोई विवाद नहीं सुना। तीस साल में मैं यहां रहता हूं। छोटा

अपने छोटे होने में खुश है, बड़ा अपने बड़े होने में खुश है; क्योंकि तुलना प्रविष्ट नहीं हुई। अभी उन्होंने तौला नहीं है।
घास का एक पत्ता भी उसी आनंद से डोलता है हवा में, जिस आनंद से कोई देवदार का बड़ा वृक्ष डोलता है। कोई भी नहीं है। घास का फूल भी उसी आनंद से खिलता है, जिस आनंद से गुलाब का फूल खिलता है। कोई भेद नहीं है।
तुम्हारे लिए भेद है। तुम कहोगेः यह घास का फूल है, और यह गुलाब का फूल। लेकिन घास और गुलाब के फूल के लिए कोई तुलना नहीं, वे दोनों अपने आनंद में मग्न हैं। जो तुलना छोड़ देता है, वह मग्न हो जाता है। जो मग्न हो जाता है, उसकी तुलना छूट जाती है।
तो कबीर कह रहे हैंः हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।
और अब तब पूरा आनंद बरस गया है, गगन-गुफा में अमृत की धार बह रही है, तो
अब क्या तौलना।
उससे उलटा भी सही हैः तुम तौलना बंद कर दो तो गगन की गुफा का द्वार खुल जाएगा। तुम तौलना बंद कर दो तो तुम अभी आनंदित हो जाओगे; या आनंदित हो जाओ तो तौल बंद हो जाएगीः दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, कहीं से भी शुरू करो।
कबीर ठीक ही कह रहे हैं, सिद्ध की दशा है, कि जब तक हलकी थी तराजू, तब तक तौलती रही है--और अब जब पूरी हो गई तो अब क्या तौले।
... लेकिन तुम्हारी दशा तो सिद्ध की नहीं है--साधक की है।... तुम कहां से शुरू करोगे? तुम तौलना छोड़ो। जैसे-जैसे तुम तौलना छोड़ोगे, मैं तुमसे कहता हूंः तराजू भारी होती जाएगी। किसने तुमसे कहा कि तुम किसी से तौलो? तुम अकेले हो, तुम जैसा कोई दूसरा नहीं। न तुम जैसी बुद्धि है, न तुम जैसे चेहरा; न तुम जैसी आंखें हैं; तुम्हारे जैसे हाथ नहीं, तुम्हारे अंगूठे का निशान बस तुम्हारा ही है।
सारी दुनिया में आज चार अरब आदमी हैं, चार अरब आदमियों में एक के भी अंगूठे का निशान तुम जैसा नहीं हैं। आज तब जमीन पर अरबों-खरबों लोग हो गए हैं, उन सबको कब्रों से उखाड़ लो, उनका एक का भी अंगूठे का निशान तुम जैसा नहीं। भविष्य में अरबों-खरबों लोग होंगे, उनमें से एक भी ऐसा नहीं होगा जिसको अंगूठे निशान तुम जैसा हो। तुम बिल्कुल अद्वितीय हो, तौल कैसी? तुम मुर्गे से नहीं तौलते कि देखो इसके सिर पर कैसी सुंदर कलगी और हमारे सिर पर नहीं है, और दुखी होकर बैठ जाते हो। तुम वृक्ष से तो नहीं तौलते कि देखो यह सौ फीट आकाश में उठ गया और हम केवल छह फीट--गए काम से! जब तुम वृक्ष से नहीं तौलते, मुर्गे से नहीं तौलते, तो पड़ोसी से क्यों तौल रहे हो? किसी से क्यों तौल रहे हो?
तौलोगे तो दुखी रहोगे; क्योंकि तुम तौलते ही जाओगे। कोई न कोई भिन्न रहेगा, कोई न कोई ज्यादा रहेगा, कोई न कोई... । हजार तरह के फर्क रहेंगे और तुम दुख में घने गिरते जाओगे। तौल बंद कर दो, तराजू पूरी हो जाएगी। यह साधक के लिए कह रहा हूं।
सिद्ध की बात... कबीर ठीक कह रहे हैं--हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तौले।
स्मरण रखना कि जो सिद्ध के लिए सही है, ठीक उससे विपरीत तुम शुरू करना, क्योंकि यह तो अंतिम दशा का वर्णन है; तुम जहां खड़े हो वहां का वर्णन नहीं है। वहां तो तुम्हारी तराजू तौले चली जाती है। और तब तुम व्यर्थ ही दुखी बने हो। दुख अस्तित्व में नहीं है, तुम्हारे तौलने वाले मस्तिष्क में है।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवाद पी गई बिन तोले।
यह आखिरी बात कबीर कह रहे हैं। इसे गहरे उतर जाने देना।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
कलारी है शराब की दुकान का नाक--मधुशाला। सारे पीनेवाले--सुरत कलारी-- जितने पियक्कड़ इकट्ठे हो गए थे... सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले। और बिना तौले मधुशाला को पी गए! बिना तौले! तब सारे पियक्कड़ मस्त हो गए।
तौल-मौल कर क्यों पी रहे हो? आनंद को इंच-इंच क्यों प्रवेश करने देते हो। आनंद से इतने भयभीत क्यों हो? उसे पूरा क्यों नहीं उतरने देते? पूरा आकाश तुम्हारा है। पूरा परमात्मा है। तौलने की जरूरत क्या है? यह कोई

दुकान है? यहां तुम कुछ खरीदने तो नहीं आए। अस्तित्व पूरा खुला है, तुम किसलिए भयभीत हो? तुम बिना तौले पी जाओ।
इसे थोड़ा समझें।
आदमी दुख से इतना भयभीत नहीं होता जितना आनंद से भयभीत होता है; क्योंकि दुख का तो इलाज है, आनंद का तो कोई इलाज नहीं है; और दुख से तो बचने के लिए औषधियां हैं, आनंद से बचने के लिए कोई औषधि नहीं। आनंद से आदमी भयभीत होता है, क्योंकि आनंद इतना बड़ा है कि तुम उसके नीचे खो जाओगे, तुम बच न सकोगे। दुख के ऊपर तुम बैठे रह सकते हो। दुख की गठरी पर तुम बैठते हो; आनंद की गठरी तुम्हारे ऊपर बैठेगी। आनंद इतना विराट है!
दुख से तुम इतने भयभीत नहीं हो, जितने तुम आनंद से भयभीत होते हो--इस तथ्य को विशिष्ट करके समझ लो।
बचपन से ही तुम्हें आनंद से भय सिखाया गया है। अगर बच्चा नाच रहा है अकारण तो मां-बाप कहेंगे--क्या बात है? हंसने की क्या जरूरत? अगर बच्चा कूद रहा है, प्रफुल्लित हो रहा है--और बच्चे अकारण होते हैं प्रफुल्लित। कारण का जगत अभी खुला नहीं। अभी बुद्धि के द्वार बंद हैं।
... छोटी-छोटी चीजें अकारण। एक तितली जा रही है, और बच्चा प्रसन्न हो गया, और भागने लगा तितली के पीछे। एक लाल पत्थर मिल गया, उसे उठा लाया, और समझा कि हीरा मिल गया और प्रसन्न है। कभी कुछ भी नहीं मिलता है, बैठा है और प्रसन्न हो रहा है।
एक घर में मैं मेहमान था। दो छोटे बच्चे, जिनकी उम्र करीब-करीब छह साल
की रही होगी--एक लड़का और एक लड़की; और एक और छोटा बच्चा, जिसकी उम्र मुश्किल से तीन, साढ़े तीन साल रही होगी-- वे तीनों खेल रहे थे। घर के लोग बाहर गए थे, मैं अकेला था। मैंने देखा कि बच्चे एक कमरे में हैं--एक लकड़ी और एक लड़का-- और सबसे बड़ा बच्चा बाहर सीढ़ियों के पास बैठा बड़ा प्रसन्न हो रहा है, गदगद हो रहा है। कुछ कारण नहीं दिखाई पड़ता। वह खेल में भागीदार भी नहीं है, जो खेल चल रहा है।
तो मैं उसके पास गया और मैंने पूछा, क्या मामला है, तुम खेल नहीं रहे हो?
उसने कहा, मैं खेल रहा हूं।
... तू यहां बाहर बैठा हुआ है सीढ़ियों पर! खेल तो वहां भीतर चल रहा है?
उसने कहा, वह खेल है--लड़का डैडी बना है, लड़की मम्मी बनी है, और मैं होने वाला बच्चा हूं। अभी मैं पैदा नहीं हुआ।
अभी वह पैदा भी नहीं हुए हैं गदगद हो रहे हैं! और तुम्हें पैदा हुए कितने साल हो गए, तुम अब तक गदगद नहीं हुए हो।... कब होओगे? क्या मरने की रात देख रहे हो?
वह बड़ा प्रसन्न हो रहा है, क्योंकि जल्दी वक्त आ रहा है।
बच्चे अकारण प्रसन्न होते हैं, और हम उनकी प्रसन्नता को तोड़ते हैं; तुम उन्हें गंभीर बनाना चाहते हैं। गंभीरता रोग है। लेकिन बाप पढ़ रहा है, या हिसाब लगा रहा है, या नोट गिन रहा है--वह समझता है, बहुत भारी काम कर रहा है। वह बच्चे से कहता है--चुप रहो, मुझे गिनती भूल जाती है।
तुम नोट गिन रहे हो--जिससे ज्यादा व्यर्थ काम दुनिया में खोजना मुश्किल है; जिनको गिन-गिन कर तुम कहीं न पहुंचोगे--और बच्चे से कहते हो, चुप रहो! और बच्चो आनंद गिन रहा था, वह अकारण नाचना चाहता था, अमकारण कूदना चाहता था--तुमने क्षुद्र के लिए विराट को रोक दिया!
और जब सब तरफ से बच्चे पर यह रुकावट पड़ती है, तो धीर-धीरे वह गंभीर होने लगता है। और तब एक बात उसका समझ में आ जाती है कि इस समाज में निमंत्रण, कंट्रोल का मूल्य हैः अपने को नियंत्रित रखो! और जितना तुम ज्यादा अपन को नियंत्रित रखोगे, उतना ही आनंद का द्वार बंद हो जाएंगे। क्योंकि आनंद तो उतारता है तुम्हारे स्वच्छंद चित्त में, स्वतंत्र चित्त में--जहां कोई नियंत्रण नहीं, जहां सब कंट्रोल, सब नियंत्रण नीचे रख दिए गए हैं। तभी तुम पूरी मधुशाला को पीने में समर्थ हो पाते हो।
हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा व्यक्ति को उपयोगी बनाने की है, आनंदित बनाने की नहीं। उपयोगी का अर्थ है--कहीं क्लर्क हो जाना, कहीं स्कूल में मास्टर हो जाना, किसी दफ्तर में किसी आफिस में, मशीनरी में फिट हो जाना और

जिंदगी भर काम करना, और जिंदगी भर पैसे कमाना, और बच्चे पैदा करना--और उनको भी इसी के लिए तैयार करना कि वे भविष्य में फैक्टरी चलाएं।
कुछ फर्क नहीं मालूम पड़ताः पहले तुम्हारे बाप फैक्टरी चलाते थे, अब तुम फैक्टरी चलाते हो। उन्होंने तुम्हें तैयार किया, कभी सुख न जाना जीवन का, तुम्हें तैयार किया कि फैक्टरी चलाओ, अब तुम और बच्चे पैदा करके तैयार कर रहे हो कि अब तुम फैक्टरी चलाना। जैसे कि फैक्टरी कोई बड़ी भारी बात है, जिसको चलाने के लिए सब को पैदा होने की जरूरत है।
फैक्टरी न चली तो कुछ फर्क नहीं है। फैक्टरी चल गई तो होना क्या है? आदमी व्यवस्था से कम कीमत का हमने कर दिया है। और जैसे-जैसे फैक्टरी चलती जाती है, वैसे-वैसे आदमी कम कीमत का होता जाता है।
तुम्हारा उपयोग क्या है? तुम्हारा उपयोग इतना है कि तुम समाज के ढांचे में काम के हो जाओ। हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा बस इसीलिए है कि आदमी मशीन हो जाए और मशीन की जगह काम करने लगे। जितना कुशल आदमी हो मशीन होने में, उतना हमारी व्यवस्था में ऊपर पहुंच जाता है। हम कहते हैं, यह आदमी बड़ा कुशल है। जितना अकुशल आदमी हो, उतनी हमारी व्यवस्था में नीचे छूट जाता है। लेकिन कुशलता का क्या अर्थ है, जिससे आनंद उपलब्ध न होता हो?
जीवन व्यवसाय नहीं है। और यही गृहस्थ और संन्यासी का फर्क है--मेरे लिए। जिसने जीवन को व्यवसाय समझा है, वह गृहस्थ। और जिसने जीवन को उत्सव समझा है, वह संन्यासी।
तुम्हें मैंने संन्यास के लाल रंग के कपड़े दिए हैं--सिर्फ इस ख्याल से
कि तुम समझोगे कि लाल फूलों का स्वाभाविक रंग है। जिसका जीवन फल की आकांक्षा रखता है, वह गृहस्थ; और जिसका जीवन सिर्फ फूल होना चाहता है, वह संन्यासी। फूल का उपयोग है; फूल का क्या उपयोग है? फल तो तुम खा सकते हो, पचा सकते हो, खून बना सकते हो; फूल का क्या करोगे? फूल का कोई भी तो उपयोग नहीं है। इसलिए जब हम आनंदित होता हैं, किसी के उत्सव में सम्मिलित होते हैं, तो फूल ले जाते हैं। फूल निरुपयोगी है, नॉन-यूटिलिटेरियन है। वह कविता की तरह है। उसका कोई भी तो उपयोग नहीं है। उससे तुम प्रसन्न हो सकते हो, उससे तुम तिजोड़ियां नहीं भर सकते हो। तिजोड़ियां भरने के लिए तो मुर्दा नोट चाहिए, जिंदा फूल काम न पाएगा। क्योंकि जिंदा फूल अगर तुमने तिजोड़ी में भर लिए तो वे सब सड़ जाएंगे। मरे नोट चाहिए, जो सड़ते ही नहीं। मरी-मराई चीज फिर नहीं मरती, जिंदा चीज तो मरती है।
संन्यास का अर्थ है, जो जिंदगी को फूल की तरह देखता है, फूल की तरह नहीं। यही कृष्ण गीता में अर्जुन को कह रहे हैं। प्रतीक अलग, कहानी और है, पृष्ठभूमि भिन्न है, पर सार तो यही है। वे यही कह रहे हैं कि तू कर्म-फल की आकांक्षा मत कर। तू फल की आकांक्षा मत कर। तू रिजल्ट की, परिणाम की, आकांक्षा मत कर। तू फूलों की भांति हो जा। जो हो रहा है, होने दे; जो हो सकता है, कर; लेकिन तू इसको प्रयोजन मत बना, तू सिर्फ निमित्त रह।
फूल की भांति होने का अर्थ है, तुमने जीवन में उत्सव को जगह दी। अब तुम नाचोगे, गाओगे, प्रसन्न होओगे। लेकिन, अगर तुमसे मैं कहूं, नाचो, तो तुम्हारा मन तत्काल पूछेगा--क्या फायदा होगा?
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान करने से फायदा क्या?
... तुम बैंक के बाहर कभी निकलोगे कि नहीं? ... तुम दुकान के बाहर कभी आओगे कि नहीं, फायदा... प्राफिट! ... तुम्हारे सोचने का सभी ढंग रुपयों में बंधा है। अगर मैं उनको कह दूं कि जब समाधि लगेगी, तो एकदम हजार का नोट प्रकट होगा, तो वे कहेंगे, करने जैसा है! जल्दी राज बताइए, गुर क्या है? देर क्यों की? लेकिन अगर मैं उनको कहता हूं कि आनंद बरसेगा, ऐसी घड़ी आएगी--सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले--तो वे कहेंगे, यह अपने बस की बात नहीं! फिर अभी समय भी नहीं आया! वे इसके लिए मरने की प्रतीक्षा करेंगे। लोग ठीक मरते वक्त धार्मिक होते हैं। आखिरी वक्त पर टालते रहते हैं। इसीलिए लोग कहते हैंः जब बूढ़े हो जाओ तब सुनना संतों की बातें। अभी तो जवान हो, अभी कहां जा रहे हो?
लोग मेरे पास आते हैं। एक बूढ़े सज्जन मेरे पास आए। उनके लड़के ने संन्यास ले लिया। लड़का भी ऐसा कि अब कोई लड़का नहीं है--पचास साल का है! उनकी उम्र होगी कोई पचहत्तर साल की। वे कहने लगे, यह आपने क्या किया?

लड़कों को संन्यास देने लगे! अभी उसकी उम्र है? अभी मैं जिंदा हूं! अब जब तक बाप जिंदा है, तब तक बेटा लड़का ही है। आपने उसको संन्यास दे दिया? यह तो आखिरी बात है!
मैंने कहाः अब आप आ ही गए, चलो छोड़ो, एक गलती मुझसे हो गई, मगर दूसरी न होने दूंगा। उन्होंने कहाः क्या मतलब?
मैंने कहा, आपको संन्यास... ।
... मुस्कुराने लगे। वह मुस्कुराहट खोखली... कि नहीं, सोचूंगा, आऊंगा। मैंने कहाः अब और क्या देर है?
... कि नहीं, मैं इसलिए तो आया ही नहीं था। यह सवाल नहीं है।
अगर तुम कहते हो लड़के के लिए थोड़ी देर से देना, तो देर तुम्हारे लिए हो गई। पचहत्तर साल काफी हैं। और सबसे ज्यादा तुम जी गए हो। मूल तो चूक गया, ब्याज में जी रहे हो! अब अभी संन्यास की हिम्मत नहीं?
नहीं, कहने लगे, सोचूंगा, अभी कोई काम-धाम पड़े हैं, उलझने हैं, नाती- पोतों की शादी करनी है। पर आऊंगा, एक दिन जरूर आऊंगा!
वे कह कर गए थे। लेकिन वह एक दिन नहीं आया, क्योंकि वे मर गए। कुछ दिन पहले उनके लड़के का पत्र आया कि पिताजी चल बसे।
व्यवसाय में ही मत चल बसना।
जीवन आनंद-उत्सव है। इसका अर्थ नहीं है कि तुम व्यवसाय मत करना। तुम व्यवसाय आनंद उत्सव के लिए ही करना। तुम कमाना तो भी गंवाने को। तुम इकट्ठा करना तो भी लुटाने को। तुम बचाना तो भी बांटने को। लक्ष्य तुम्हारा आनंद रहे। लक्ष्य तुम्हारा फूल रहे। खिले और लूटा दे अपनी सारी सुगंध।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी पाई बिन तोले।
तुम आनंद को तौल-तौल के मत पीयो, तुम बिना तौले पी जाओ। यहां कुछ दाम
भी तो नहीं लग रहे हैं! आनंद का कोई मूल्य भी तो नहीं है! तुम्हें कुछ भी तो नहीं चुकाना पड़ रहा है। सिर्फ पीने की तैयारी काफी है--और कलारी खुली है; और मधुशाला के द्वार खुले हैं!
एक रात मुल्ला नसरुद्दीन ने मधुशाला के मालिक को फोन किया। कोई तीन बजे होंगे, कि मधुशाला कब खुलेगी? उसने कहा कि बड़े मियां! आधी रात, यह भी कोई पूछने की बात है। नींद से जगा दिया नाहक! मधुशाला नियम से खुलेगी, सुबह नौ बजे। उसके पहले एक मिनट पहले नहीं। सो जाओ!
पांच-दस मिनट बाद फिर फोन की घंटी आई। गुस्से में उस आदमी ने फिर फोन उठाया। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, कि कब तक खुलेगी मधुशाला? उसने कहा कि कह दिया एक दफा कि नौ के पहले--एक मिनट पहले नहीं, चुपचाप सो जाओ!
पंद्रह मिनट बाद फिर फोन आया। तब तो वह आदमी नाराज हो चुका था कि सोने
ही नहीं दे रहा है! उसने कहा कि मामला क्या है? क्या ज्यादा पी गए? नसरुद्दीन ने कहा कि ज्यादा पी गए हैं। और असली बात यह है कि मैं मधुशाला के भीतर बंद हूं, बाहर नहीं। तो मुझे निकलना है, भीतर नहीं आना। मधुशाला कब खुलेगी?
तुम सोचोगे, ज्यादा पी गया होगा। पूरी मधुशाला मिल गई बिना मालिक के।
जब वह रात को दुकान बंद हुई, तब वे किसी तरह भीतर रह गए।
तुम भी आनंद को ऐसे ही पीना, खरीद के नहीं। खरीदने की कोई बात ही नहीं। तौल-तौल के क्या पी रहे हो?
... लेकिन क्यों आदमी तौल-तौलकर पीता है? --ड़रता है!
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि अगर हम ठीक से नाचने लगते हैं तो थोड़ा सा भय पकड़ता है कि कहीं ऐसा न हो कि नियंत्रण खो जाए। कंट्रोल है अपने पर, वह कहीं खो न जाए! ध्यान में जाते हैं, जैसे ही घड़ी करीब आती है जब कि विस्फोट हो, तभी भयभीत हो जाते हैं। मुझसे आकर कहते है कि वहां ऐसा लगता है कहीं हम खो न जाएं! अब तक अपने पर नियंत्रण रखा है।
नियंत्रण खोने का डर क्या है?
--ड़र इसलिए है कि तुम्हारे समाज ने तुम्हें सप्रेशन, दमन सिखाया है। तुमने इतनी चीजें दबा रखी हैं कि नियंत्रण खो जाएगा। तो तुम्हें डर है कि वह प्रकट न हो जाएं। तुम दबा कर बैठे हो बहुत सी चीजें। अगर तुमने आनंद

खुलकर पिया, तो जो तुमने दबाया है वह उठ जाएगा। तब बड़ी मुश्किल होगी। तब बड़ा कठिन हो जाएगा।
गुरजिएफ के पास जब भी कोई नया साधक जाता था, तो वह पहला काम करता था उसे काफी शराब पिलाने का। गुरजिएफ अनूठा गुरु था, लेकिन बहुत काम का। अनूठे ही काम के होते हैं। जिन मुर्दों को तुम पूजते हो, वे तो किसी काम के नहीं होते। तुम उनको इसलिए ही कि बिल्कुल मुर्दा हैं, और तुम्हारे नियंत्रण को कहीं से भी नहीं तोड़ते; बल्कि तुम्हारे नियंत्रण में सहयोगी हैं, तुम्हारे दुख में सहयोगी हैं; तुम्हारे दुख को बढ़ाते हैं, जमाते हैं। तुम जाओ अपने गुरुओं के पास। कोई कहेगा, चाय पीना छोड़ो।... कोई कहेगा, सिगरेट पीना छोड़ो।... कोई कहेगा, ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो। कोई वह... तुम वैसे ही काफी दुखी हो, तुम वैसे ही काफी बंधे हो, तुमने वैसे ही काफी नियंत्रण थोप रखे हैं--वे और थोड़ा नियंत्रण बढ़ा देंगे; वे तुम्हारे हाथ पर थोड़ी और जंजीरें डाल देंगे। वे तुम्हें आनंद पाने के लिए नहीं उकसाएंगे; वे तुम्हें और बंधन में जाने के लिए उकसाएंगे।
यह सच है कि आनंद के उतरने पर ये सब चीजें खो जाती हैं--जो क्षुद्र आज तुम्हें पकड़े हुए हैं। वे पकड़े ही इसलिए है।
अगर एक आदमी शराबी है, तो उससे शराब छुड़ाने के दो उपाय हैं। एक तो उपाय
यह है कि उससे वचन लो, उसको आज्ञा दो, उससे कसम खवा लो, कि व्रत दे दो कि अब मैं शराब नहीं पीयूंगा। यह तुमने उसके हाथ पर एक और जंजीर डाल दी। और दूसरा रास्ता यह है कि उसे परमात्मा की शराब पीने की तरफ ले जाओ। और जिस दिन वह परमात्मा की शराब पी लेगा, उस दिन यह शराब छूट जाएगी। यह तुमने मुक्ति की तरफ, आनंद की तरफ बढ़ाया--बंधन नहीं डाले, तोड़े।
शराब तो छूट ही जाएगी; जब उसकी शराब पी ली तो यह शराब बदबू देने लगेगी।
जब उसकी शराब पी ली तब यह शराब गंदी नाली का पानी मालूम पड़ने लगेगी। जब उसका प्रेम पा लिया तो ब्रह्मचर्य तो अपने आप घट जाएगा; उसे घटाने की कोई जरूरत नहीं। और जब उसका संपदा मिल गई, तब इस संपदा पर, कौड़ियों पर आग्रह तुम्हारा अपने आप छूट जाएगा। पाओ, ताकि यह संसार छूट जाए। यही तो परम-ज्ञानियों का सदा से संदेश है।
लेकिन, जिन मुर्दों को तुम पूजते हो, वे तुम्हें और हथकड़ियां डाल देंगे। उन्होंने ही तो हथकड़ियां डाली हैं; या उनके बापदादा ने। और उन्होंने सब तरफ से तुम्हें बांध दिया है। तुम मुस्करा भी नहीं सकते खुल कर, क्योंकि लोग कहेंगे, यह असंस्कारी है। ऐसे कहीं खिलखिला कर हंसा जाता है। हंसते भी तुम ऊपर-ऊपर हो। तुम्हारी हंसी पेट तक नहीं आती; क्योंकि वहां भय है। क्योंकि पेट में ही सब दमन है। वहीं कामवासना दबी पड़ी है। अगर हंसी पेट तक गई, तो तुम तत्क्षण पाओगे कि वासना जग रही है। तो डरते हो तुम। ऊपर ही ऊपर हंसते हो; श्वास तक पूरी नहीं लेते।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि श्वास तुम पूरी तभी ले सकोगे, जब कामवासना
के प्रति तुम्हारा विरोध मिट जाए। तुम श्वास भी ऊपर-ऊपर लेते हो; छाती के ऊपरी हिस्से से लेते हो, भीतर तक नहीं क्योंकि अगर श्वास भीतर तब जाएगी, तो वह काम के केंद्र पर चोट करती है।
मेरे पास लोग आते हैं। जब वे ठीक से सक्रिय ध्यान करते हैं, तो वे कहते हैंः क्या मामला है? हम तो सोचते थे ब्रह्मचर्य आएगा--वासना जग रही है। मैं उनसे कहता हूंः जगेगी, क्योंकि अब तक तुमने दबाया है। पर जगने दो, भयभीत मत होओ। उसे जाग ही जाने दो, ताकि भय मिट जाए। तुम उससे गुजर जाओ। और ध्यान तुम किए जाओ। क्योंकि वासना की ही शक्ति जब ऊपर चढ़ेगी, तभी ब्रह्मचर्य बनेगी।
ब्रह्मचर्य काम का दुश्मन नहीं है--काम का रूपांतरण है। रूपांतरण के लिए पहले तो वासना का जगना जरूरी है। शक्ति हो तभी तो रूपांतरित होगी; शक्ति ही न हो तो रूपांतरण वैसा? तो तुम भयभीत मत होओ।
तुम्हारे साधु-संत तुम्हें सब तरफ से भयभीत करते हैं। एक बात सूत्र
की तरफ समझ लोः जो तुम्हें भयभीत करे, उससे बचना। जो तुम्हें निर्भय करे, उकसे पास जाना।
गुरजिएफ के पास कोई जाता तो वह पहला करता कि शराब पिला देता--इतना पिला देता कि लोग पूछते कि यह किसलिए करते हैं? तो वह लोगों को कहता कि अब

बैठ जाओ। जब आदमी शराब पी लेता तो सारा रूप बदल जाता उस आदमी का। क्योंकि जो-जो दबा पड़ा है, वह बाहर निकलना शुरू हो जाता है। शराब जब तक नहीं पी थी तब तक रात-राम, राम-राम कर रहा था, अब वह गालियां देना शुरू कर देता है। तुम जानते हो शराबियों को? भला आदमी, लेकिन शराब पीकर... तुम कहते हो शराब की वजह से कर रहा है। कोई शराब गाली को पैदा नहीं कर सकती। कोई केमिस्ट्री सिद्ध नहीं कर सकती कि शराब से गाली कैसे पैदा हो सकती है। गाली भीतर दबी पड़ी थी, शराब ने बंधन हटा दिया, गाली उठ कर ऊपर आ गई। अब राम-राम नहीं कहता, राम चदरिया उतार कर फेंक देता है। अब तक बिल्कुल शांत मालूम पड़ता था, एकदम क्रोधित हो जाता है!
मधुशाला में जाकर देखो, वहां तुम्हें असली तस्वीर दिखाई पड़ेगी आदमी की। वही तुम्हारी असली तस्वीर भी है। तुम सिर्फ छिपाए खड़े हो। इसलिए तो तुम डरते हो शराब पीने से, कि कहीं शराब पी ली तो प्रकट हो जाएगा।... कभी भांग-वगैरह पीकर देखी, अनर्गल आदमी बकने लगता है! वह सब भीतर दबा पड़ा है। भांग कैसे उसे पैदा करेगी? भांग सिर्फ इतना करती है कि नियंत्रण को हटा लेनी है। तुम भूल गए--समाज, संस्कार, सभ्यता--सब भूल गए; सब तुम शुद्ध आदमी हो गए, जैसे तुम हो भीतर। अब शुद्ध आदमी बाहर प्रकट होने लगा। तो जब तुम होश में थे, तब तुम कह रहे थे कि बड़ी कृपा की कि आप आए! बड़ा शकुन हुआ! आप जब आते हैं तो घर में मंगल की वर्षा शुरू हो जाती है। आपका चेहरा ही देखकर फूल खिल जाते हैं। फिर शराब पी गए और कहने लगे--निकलो बाहर! इस शकल को सुबह से यहां ले आए! जब भी तुम दिखाई पड़ जाते हो, तभी दिन खराब जाता है।
यही भीतर दबा पड़ा था, वह बाहर आ गया।
गुरजिएफ पहले भीतर के आदमी को बाहर लाता है। वह कहता है, पहले यह जान लेना जरूरी है कि यह आदमी भीतर कैसा है! फिर उस हिसाब से इसकी विधियां तय करेंगे। तुम सक्रिय ध्यान करते हो, कुंडलिनी करते हो, और ध्यान करते हो-- उसमें तुम्हारे भीतर जो-जो दबा है, वह बाहर आ जाता है। गुरजिएफ शराब पिलाता था, मैं उसे जरूरी नहीं मानता। सक्रिय ध्यान बाहर ले जाता है। देखो! सक्रिय ध्यान में जो आदमी बिल्कुल शांत था। चीख रहा है, पुकार रहा है! जो आदमी बिल्कुल भूला मालूम होता था, कि कभी चोट नहीं करेगा, वह एकदम घूंसे तान रहा है हवा में, युद्ध कर रहा है; जैसे किसी को मार डालेगा। यह असली आदमी है।
शराब की कोई जरूरत नहीं है, थोड़ा नियंत्रण ढीला करने की जरूरत है, और चीज बाहर आ जाएगी। यही असली है और इसी को बदलना है। वह जो नकली ऊपर-ऊपर है, वह तो रंग-रोगन है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। उससे कुछ सार भी नहीं है। उसमें बदलाहट करने से कुछ बदलाहट होगी भी नहीं। असली को ही बदला जा सकता है, क्योंकि वही शक्ति के स्रोत हैं।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
तुम डरे हो आनंद पाने से, क्योंकि नियंत्रण... । जागो! नियंत्रण की फिकर छोड़ो, आनंद की फिकर मन में लाओ! थोड़े ही दिन में जैसे-जैसे आनंद उतरेगा, नियंत्रण अपने आप हट जाएगा। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम अनियंत्रित हो जाओगे! इसका यह भी अर्थ नहीं कि तुम असामाजिक तत्व बन जाओगे, कि तुम कुछ गलत करने लगोगे, नहीं अभी डर है, तब कोई डर न होगा अभी तुम कभी भी असामाजिक कृत्य कर सकते हो।
हत्यारों का जीवन पढ़ो। उन हत्यारों में से कोई भी ऐसा नहीं था कि कोई
भी कह सकता कि यह आदमी हत्या करेगा। ठीक तुम जैसे अच्छे-भले लोग थे; एक दिन हत्या कर दी! मनोवैज्ञानिक तो बड़े विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। वे कहते हैं, जो आदमी रोज थोड़ा-थोड़ा क्रोध करता रहता है, वह हत्या कभी नहीं कर सकता। वह अच्छा आदमी है क्योंकि इसका क्रोध रोज ही निकल जाता है। जो आदमी रोज चेहरा बनाए रखता है शांति का और इकट्ठा करता जाता है, वह किसी दिन हत्या कर सकता है।
विस्फोट के लिए, काफी आग चाहिए। रोज ही चिनगारी निकल जाए तो विस्फोट क्या! इसलिए वह पति बेहतर, वह पत्नी बेहतर जो चौबीस घंटे में एकाध दफे कलह कर लेती है। वह पति खतरनाक है, कि पत्नी कलह करती है, वह बुद्ध बने रहते हैं। यह खतरनाक है। यह किसी दिन गर्दन दबा देगा। इससे कम में उसका काम नहीं चलेगा। इतना इकट्ठा कर लेगा कि यह किसी दिन मार ही डालेगा।

साधुओं से सावधान!... हत्यारे वही हो जाते हैं। तुम देखा हिंदू- मुस्लिम दंगा हो जाए, अच्छे-भले लोग--कल तक दुकान कर रहे थे, बाजार जा रहे थे--खरीद रहे थे, बेच रहे थे--मित्र थे--अचानक सब समाप्त हो गया। वही आदमी जो कल रोज मस्जिद जाता था, नमाज पढ़ता था पांच बार, वह आदमी जो रोज मंदिर जाता था, राम-चदरिया ओढ़े रहता था--वे ही एक-दूसरे के मकान में आग लगा रहे हैं, हत्याएं कर रहे हैं; छोटे बच्चों को काट रहे हैं!
यह कैसे संभव होता है। यह सब भीतर दबा पड़ा है। तुम खतरनाक हो, जैसे तुम हो, तुम्हें विस्फोट के लिए जरा सी जरूरत है--बस आग पकड़ जाती है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते है, हर दस साल में दुनिया में एक बड़ा युद्ध चाहिए ही; क्योंकि लोग इतना इकट्ठा कर लेते हैं कि अगर युद्ध में नहीं निकलेगा तो लोगों का जीवन मुश्किल हो जाएगा। और छोटे-छोटे पागलपन चाहिए ही। किसी भी बहाने पागलपन बाहर निकल आता है; कोई बहाना मिल जाए।... फुटबाल खेल रहे हैं लोग। अब बड़ी हैरानी की बात है, लाखों लोग देखने इकट्ठे हो जाते हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं वे लोग, गेंद इधर-उधर फेंक रहे हैं। और ये धूप सह रहे है, और खेलने वालों से भी ज्यादा उछल-कूद मचा हरे हैं। झगड़े हो जाएंगे, मारपीट हो जाएगी।
घोड़ों की रेस चल रही है, उस पर लोग जाकर दांव लगा रहे हैं; बिल्कुल पुलकित हो रहे हैं; दुखी हो रहे हैं; रो रहे हैं; हंस रहे हैं अगर तुम इनको गौर से देखो, तो तुम पाओगे; यह बड़ा पागलपन है, यह किस तरह चल रहा है! तुम किसी घोड़े को राजी न कर सकोगे। आदमियों को दौड़ाओ, घोड़े कभी न आएंगे देखने! घोड़े कहेंगे कि यह क्या पागलपन है! गधे भी न आएंगे, घोड़ों की तो छोड़ो! लेकिन घोड़े दौड़ रहे हैं और आदमी वहां खड़े हैं। बड़े समझदार लोग हैं; पैसा है, पद है--सब है; बुद्धिमान हैं।... क्या कर रहे हैं? कुछ पागलपन है, जिसको निकास के लिए रास्ते चाहिए।
मुर्गे लड़ा रहे हैं! बड़े-बड़े नवाब हैं, बैठे हैं, मुर्गे लड़ा रहे हैं। मुर्गे के लड़ाने से हिंसा निकल रही है। अगर मेरे मुर्गे ने तुम्हारे मुर्गे को मार डाला तो यह प्रतीक हैः मैंने तुम्हें मिटा डाला। यह बहाना है। अगर मेरा मुर्गा हार गया तो मैं रात सो न सकूंगाः हार हो गई।
फिर, मुर्गे-वगैरह महंगे काम हैं, तो लोग सस्ते काम--शतरंज! उस पर घोड़े, हाथी--नकली--असली तो महंगा है, असली हाथी रखो, घोड़ा रखो--वे जमाने गए, राजा-महाराजा न रहे--तो शतरंज! बैठे हैं लोग, शतरंज खेल रहे हैं। और ऐसे लीन हैं कि जैसे कबीर का वचन इन्हीं के लिए हैः सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले। हिंसा, क्रोध शतरंज से निकल रहा है।
हमारे खेल युद्ध के संक्षिप्त संस्करण हैं, हिंसा के रूप हैं। हम सब भांति भरे हुए हैं व्यर्थ कचरे से! तुम्हें उसे हटाना पड़ेगा। नहीं तो तुम आनंद से भयभीत रहोगे। और जो आनंद से भयभीत हो गया, वह भ्रष्ट हो गया।
क्योंकि सारा जीवन आनंद के लिए है। और ये सारा जीवन, सारे जीवन की यात्रा एक ही मंजिल को मानती है--वह आनंद है।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाए मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले।
यह सूत्र है सार काः हंसा पाए मानसरोवर पर, ताल-तलैया क्यों डोले।
... अगर हंस को मानसरोवर मिल गया तो अब वह क्षुद्र ताल-तलैया में क्यों भटकेगा। जिसको परमात्मा मिल गया, वह अब क्षुद्र में क्यों भटकेगा। जिसको वह आखिरी शराब मिल गई, वह सब इन मधुशालाओं में क्या जाएगा! इनमें भी तो उसी की तलाश में जाता है। पत्नी में तुम उसी प्रेम को खोज रहे हो, जो तुम्हें प्रार्थना से मिल सकता है--पति में भी तुम उसी प्रेम को खोज रहे हो--जो परम धन में ही मिल सकता है। पद में भी तुम वही खोज रहे हो, जो कोई पति से कभी नहीं मिल सकता--सिर्फ परमात्मा से मिल सकता है। धन में भी तुम वही खोज रहे हो, जो परमधन में ही मिल सकता है। पद में भी तुम वही खोज रहे हो, जो परमपद में मिल सकता है। संसार में तुम उसी को खोज रहे हो--जो परमधन में ही मिल सकता है। पद में भी तुम वही खोज रहे हो, जो संसार में नहीं है।
हंसा पाए मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोल।
इसलिए असली सवाल ताल-तलैया छोड़ने का नहीं है, मानसरोवर खोजने का है।
यह सवाल नहीं है कि तुम क्षुद्र को छोड़ो। क्षुद्र छोड़ने योग्य भी नहीं है--

इतना क्षुद्र है। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है। अगर तुम क्षुद्र को छोड़ने में लगोगे, तुम उसको बड़ा महत्व दे दोगे। इतना महत्व भी नहीं है उसका। तुम तो विराट को पाने में लगो।
संसार को छोड़ना नहीं है, परमात्मा को पाना है। कबीर और नानक का यही गहनतम संदेश है। इसलिए उन्होंने संन्यासी नहीं बनाए। उनका संन्यासी गृहस्थ है। वह घर में है।
संसार को क्या छोड़ना! छोड़ने-योग्य भी नहीं है। परमात्मा को पाना है।
और जिसने परमात्मा को पा लिया, संसार उसके लिए क्या बाधा है? रहा आए। ताल-तलैया जहां हैं, रहे आए। मेरा मानसरोवर मुझे मिल गया, मैं ताल-तलैयों में नहीं डोलता। ताल-तलैया को छोड़ कर भागने की कोई जरूरत नहीं। ताल-तलैया को मिटाने का भी कोई जरूरत नहीं। अभी जिनको मानसरोवर नहीं मिले हैं, तो उनके लिए कुछ तो बचने दो। जिनको मानसरोवर नहीं मिला है, कम से कम ताल-तलैया रहने दो!
जीवन के दो ढंग हैं--एक ढंग है--नकारात्मक, निगेटिव; एक ढंग है--विधायक, पाजिटिव एक ढंग है कि जो गलत है, उसको छोड़ो; वह नकारात्मक है। और दूसरा ढंग है कि जो सही है, उसे पाओ; वह विधायक है। तुम नकारात्मक से बचना, क्योंकि निषेध सिर्फ मृत्यु में ले जाता है।
मैं तुमसे नहीं कहताः धन छोड़ो। मैं तुमसे नहीं कहताः घर छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूंः जागो! यह घर तुम्हारे लिए काफी नहीं है, बड़े घर को खोजो! और बड़ा घर मिल जाए तो तुम इस घर में भी रहे जाओगे, लेकिन कमलवत हो जाओगे। यह घर तुम्हें छुएगा नहीं। तुम रहोगे संसार में और संसार के बाहर रहोगे, संसार तुम्हारे भीतर प्रवेश न करेगा।
हंसा पाए मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
संसार को अर्थ हैः जो भीतर है उसे हम बाहर खोज रहे हैं; धर्म का अर्थ हैः जो जहां है उसे हम वहीं खोज रहे हैं।
सूफी फकीर औरत हुईः राबिया। बड़ी बहुमूल्य! स्त्रियों में दो-चार स्त्रियां ही मनुष्य-जाति के इतिहास में इस ऊचांई तक पहुंची हैं, जहां राबिया है। एक दिन लोगों ने देखा, घर के बाहर कुछ खोजती है। बूढ़ी औरत! तो दूसरे लोग भी साथ देने आ गए। पुरानी कहानी है, अब तो कोई नहीं आता। छोटा गांव, पास-पड़ोस के लोग आ गए। उन्होंने कहा कि राबिया, क्या खो गया है। उसने कहाः मेरी सूई खो गई है।
तो खोजने लगे वे भी। सांझ का ढलता सूरज, अंधेरा उतरता है। फिर एक आदमी
ने पूछा कि सुई बहुत छोटी चीज है, रास्ता बड़ा है, कहां गिरी? ठीक जगह बताओ तो मिल भी जाए। अन्यथा रात उतरने के करीब है।
राबिया ने कहाः वह मत पूछो कि कहां गिरी, क्योंकि गिरी तो घर के भीतर है।
वे सब हंसने लगे, उन्होंने कहाः राबिया, पागल तो नहीं हो गई? अगर सुई
घर के भीतर गिरी है तो बाहर क्यों खो रही है?
राबिया ने कहाः मजबूरी है। घर में दीया है, अंधेरा है। और अंधेरे में खोजने से क्या सार! बाहर खोजती हूं, सूरज की थोड़ी रोशनी शेष है। रोशनी में ही खोजा जा सकता है।
लोगों ने कहाः पागल, रोशनी में खोजा जा सकता है, वह सच है। लेकिन अगर खोया ही न हो वहां, तो रोशनी भी क्या करेगी? रोशनी कोई सुई को बना तो न देगी। अच्छा हो राबिया कि दीये को हम घर के भीतर ले जाए। क्योंकि जो जहां खोई है, वहीं मिलेगी।
राबिया ने कहा कि तुम बड़े समझदार हो, लोगो। लेकिन अपनी जिंदगी में तुमने ऐसा नहीं किया। और मैं वैसा ही कर रही हूं, जैसा तुमने अपनी जिंदगी में किया है। भीतर जिसे खोया है, तुम बाहर खोज रहे हो। तो मैंने सोचा यही तर्क तुम्हारा है; तुम्हारी बस्ती में रहती हूं, इसी तर्क को मान कर चलना ठीक है। लेकिन तुम मुझे पागल कह रहे हो।
तुमने कभी सोचा कि तुमने आनंद कहां खोया है?

तुमने आनंद कारों में खोया है, बड़े मकानों में खोया है, तिजोड़ियों में खोया है--तुम्हें याद आता है कभी? तुम जब इस संसार में आए थे, तो न तो तिजोड़ियां साथ लाए थे, न बड़ी कारें, न बड़े मकान। तुम क्या लेकर आए थे? लेकिन आनंद तुम्हारे साथ था--तुम प्रफुल्लित थे। बच्चे की भांति तुम परम आनंदित थे, आह्लादित थे। आनंद तुम भीतर लेकर आए थे।
इस बात को समझ लेना जरूरी है कि जिसका हमने स्वाद न लिया हो, उसे हम खोजेंगे कैसे। हर आदमी आनंद खोज रहा है। इसका मतलब है। कि कभी न कभी उसने आनंद को जाना है, कोई स्वाद पहचाना है, खोजोगे कैसे?
हर बच्चा आनंद से पैदा होता है। हर बच्चा आनंद के जगत से आता है। हर बच्चा अपने भीतर आनंद की धन लाता है। फिर धीरे-धीरे हम उस पर हावी हो जाते हैं, समाज संस्कारित करता है।
... इसलिए तो तुम्हें चार साल के पहले की याद नहीं आती। तुम खोजने की कोशिश करो अपने अतीत में, तो तीन साल, चार साल, पांच साल--बस उस उम्र तक तुम याददाश्त ले जा सकोगे। फिर याददाश्त समाप्त हो जाती है। क्यों? ... क्या कारण है? ... तुम थे, तो याददाश्त तो होनी चाहिए। लेकिन तुम इतने आनंदित थे कि याददाश्त तो दुख की बनती है, आनंद की नहीं बनती। जब जूता पैर में ठीक आ जाता है तो दर्द होता ही नहीं, तो याददाश्त कैसे बनेगी? तुम चार-पांच साल की उम्र तक याद नहीं कर पाते, क्योंकि तुम इतने प्रफुल्लित थे इतने प्रसन्न थे, याददाश्त बनी ही नहीं। दुख ही न था तो लकीर ही न खिंची। तुम्हारा मन कोरा का कोरा ही रहा।
आनंद की कोई लकीर नहीं खिंचती। आनंद तो आकाश में उड़ते हुए पक्षियों
की भांति है, उनके पद-चिह्न नहीं छूटते। इसलिए तुम याद नहीं कर पाते। मगर कुछ अनजानी धुन भीतर गूंजती रहती है। इसलिए बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी कहता है कि बस, बचपन सब कुछ था। बचपन के गीत गाता है। जीसस कहते हैंः जब तुम पुनः बच्चों की भांति न हो जाओगे तब तक प्रभु का राज्य तुम्हें मिल सकेगा। इसका अर्थ ही हुआ कि बच्चों को प्रभु के राज्य की कुछ झलक थी। निश्चित थी। आनंद भीतर था, समाज ऊपर से छा गया। शिक्षा और संस्कार ने सब दबा दिया। तुम्हें फिर से शिक्षा और संस्कार काटना पड़े, और अपने भीतर के आनंद की तलाश करनी पड़ेगी।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।।
तिल शब्द को समझना उपयोगी है। आंख खोल कर तुम देखते हो, हिमालय दिखाई पड़ता है--विराट हिमालय! उत्तुंग उसके शिखर! आकाश को छूती हुई उसकी भुजाएं। हिम से ढके हुए हिमालय को तुम देखते हो। इतना विराट हिमालय और तुम्हारी छोटी सी आंख इतने बड़े हिमालय को देख पाती है। अगर हिमालय को छिपाना हो तुम्हारी आंख से, तो कया करना पड़े? एक छोटा सा रेत का टुकड़ा तुम्हारी आंखों में डाल देना जरूरी है। बस, आंख तिलमिला गई, हिमालय खो गया। हिमालय छिप गया तिल की ओट में। आंख में किरकिरी--और हिमालय खो गया। एक जरा से रेत के टुकड़े ने, जो आंख से दिखाई भी न पड़े, उसमें हिमालय दब गया इतना विराट! कबीर कहते है, ऐसा ही तुम्हारा साहब खो गया है। आंख में जरा सा तिल, जरा सा कचरा पड़ गया है, और इतना विराट परमात्मा छिप गया है! तुम्हें कुछ परमात्मा को खोजने के लिए और नहीं करना, सिर्फ आंख को साफ कर लेना है; आंख की किरकिरी को साफ करना है। साफ आंख--और परमात्मा उपलब्ध है। वह सादा वहां मौजूद है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।
तिल की ओट में छिपा है--साहब, मालिक, प्रभु! उसको खोजने कहीं दूर जाने
की जरूरत नहीं, बस आंख से तिल हट जाए।
क्या है तिल? किस आंख और किस तिल की बात कर रहे हैं कबीर।
तुम्हारा अहंकार बस रेत की तरह तुम्हारी आंख पर पड़ा है। मैं हूं--यही
है तिल। इसी के नीचे वह छिप गया है--जो वस्तुतः है। और जैसे ही तुम हटा दोगे कि मैं हूं, यह गया, वही हो गया। मैं के कटते ही तिल हट जाता है, साहब मिल जाते हैं।

तुम तब तक हो, तब तक तुम उसे न पा सकोगे। तुम अपने को जिस क्षण खोने को राजी हो जाओगे, उसी क्षण वह मिला हुआ है। वह मिला ही हुआ था। उसे खोया ही न था, बस आंख में तिल पड़ गया था।
इस पद को मैं पूरा दोहरा देता हूं, ताकि तुम्हारे हृदय में गूंजता रह जाए...
मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गांठ गठियायो, बारबार बाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाए मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले।।
तेरा साहब है घर मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले।।

आज इतना ही।

घूंघट के पट खोल
तीसरा प्रवचन

मन रे जागत रहिए भाई

सूत्र
मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।।

मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।।

मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।
जुगन-जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।।

तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारया खोई रे।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे।।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।।

ज्ञान की यात्रा में श्रद्धा के चरण चाहिए। अश्रद्धा तो जंजीरों की तरह हैः बांध लेती है, रोक लेती है। श्रद्धा पंख की भांति हैः मुक्त करती है खुले आकाश में।
लेकिन श्रद्धा बड़ी कठिन घटना है। अश्रद्धा मन के लिए बड़ी सुगम और सरल है; क्योंकि अश्रद्धा भय है, श्रद्धा अभय है।
अश्रद्धा का अर्थ है कि जो मुझे ज्ञात है, बस उतना ही सत्य है, कहीं और जाने की जरूरत नहीं; जो मैंने जान लिया वह काफी है, कुछ और जानने की न तो जरूरत है, न कुछ और जानने को है। इसलिए अश्रद्धा ज्ञात से चिपकने का नाम है, ज्ञात को जकड़ लेने का नाम है।
श्रद्धा अज्ञात में यात्रा हैः जो मैं जानता हूं, वह बहुत ना कुछ है। जैसे विराट सागर के किनारे और मैंने चुल्लूभर पानी अपने हाथ में ले लिया हो ऐसा है मेरा जानना; और जो शेष है जानने को वह विराट सागर है।
जो मैंने जान लिया है, श्रद्धावान उसे सीढ़ी बनाता है--उसमें उठ जाने की, जो नहीं जाना है। अश्रद्धावान, जो जान लिया है उसे कारागृह बना लेता है, दीवाल बना लेता है--अवरोध के लिए, ताकि वह जो खुला आकाश है अज्ञात का, उससे सुरक्षा हो सके।
साधारणतः अश्रद्धालु समझते हैं कि वे बहुत शक्तिशाली, साहसी हैं। बात बिल्कुल उलटी है। अश्रद्धा कायरता का निचोड़ है; श्रद्धा साहस का नवनीत। क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है कि मैं अज्ञात में, अनजान में, बे-पहचाने में, कदम उठाने को राजी हूं। बड़ा साहस चाहिए। और शिष्य होने का कोई और अर्थ नहीं होता है। श्रद्धा में गति बढ़े, श्रद्धा में रस बढ़े, तो ही शिष्यत्व का फूल खिलता है; अन्यथा गुरु और शिष्य के बीच सेतु क्या होगा?
गुरु ऐसे है जैसे आंखें मिल गईं, और शिष्य ऐसे है जैसे अंधा। अंधे और आंखवाले के बीच विवाद क्या हो सकता है? क्योंकि जिसके पास आंखें हैं, उसे प्रकाश के किसी और प्रमाण की कोई जरूरत नहीं। प्रमाण है भी नहीं कोई और। क्या प्रमाण है प्रकाश का, सिवाय तुम्हारी आंखों के? जिसके पास आंखें हैं, उसके लिए प्रकाश स्वयंसिद्ध है। और जिसके पास आंखें नहीं हैं, उसके लिए प्रकाश का अनुमान भी असंभव है। जानना तो दूर, अनुमान करना भी कि प्रकाश जैसी कोई चीज हो सकती है, अंधे के लिए असंभव है। प्रकाश भी दूर, अंधे को अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम शायद सोचते हो कि अंधा तो अंधेरे में जीता हैं। तो तुम गलती में हो। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। प्रकाश को देखने के लिए तो आंख चाहिए ही; अंधेरा भी आंख का ही अनुभव है। बिना आंख के अंधेरे का भी कोई पता नहीं चल सकता। अंधे को अंधेरे का भी पता नहीं है। और

प्रकाश के प्रमाण मांगेगा, प्रकाश के लिए तर्क करेगा, तो सदा अपने अंधेपन से बंधा रह जाएगा।
और, प्रकाश को जिसने जान लिया, वह प्रकाश का वर्णन भी नहीं कर सकता, प्रमाण देना तो बहुत दूर है। वह यह भी नहीं कह सकता कि प्रकाश कैसा है।
उसका तो स्वाद ही लिया जाता है। स्वाद से ही उसकी प्रतीति होती है। आंखवाले के लिए परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं हैं। और जिसके पास आंख नहीं है, उसके लिए परमात्मा को छोड़कर सभी चीजें सत्य हैं; परमात्मा एकमात्र असत्य है।
तो शिष्य और गुरु के बीच सेतु क्या होगा? कैसे शिष्य और गुरु मिलेंगे? कैसे उनके बीच एक ही दिशा में यात्रा का प्रारंभ होगा। वे कैसे प्रस्थान करेंगे? क्या होगा जोड़?
अगर शिष्य की तरफ विवाद की आकांक्षा हो तो जोड़ नहीं हो सकता। तब वे विपरीत दिशाओं में यात्रा करेंगे। शिष्य की तरफ अगर तर्क का आग्रह हो तो यात्रा असंभव है। क्योंकि वस्तुओं का स्वभाव ऐसा है कि उन्हें जाना जा सकता है, लेकिन जानने के पहले उनके लिए कोई तर्क नहीं दिया जा सकता।
कुछ वर्ष पहले पहलगांव (कश्मीर) में एक घटना घटी, जो मुझे भूले नहीं भूलती। एक वृक्ष के नीचे बैठा था। ऊंचाई पर वृक्ष में छोटा-सा एक घोंसला था, और जो घटना उस घोंसले में घट रही थी उसे मैं देर तक देखता रहा, क्योंकि वही घटना शिष्य और गुरु के बीच घटती है। कुछ ही दिन पहले अंडा तोड़कर किसी पक्षी का एक बच्चा बाहर आया होगा, अभी भी वह बहुत छोटा है। उसके माता-पिता दोनों कोशिश कर रहे हैं कि वह घोंसले पर पकड़ छोड़ दे और आकाश में उड़े। वे सब उपाय करते हैं। वे दोनों उड़ते हैं आसपास घोंसले के, ताकि वह देख ले कि देखो हम उड़ सकते हैं, तुम भी उड़ सकते हो।
लेकिन अगर बच्चे को सोच-विचार रहा हो तो बच्चा सोच रहा होगा, तुम उड़ सकते हो, उससे क्या प्रमाण कि हम भी उड़ सकेंगे; तुम तुम हो, हम हम हैं; तुम्हारे पास पंख हैं--माना, लेकिन मेरे पास पंख कहां हैं?
क्योंकि पंखों का पता तो खुले आकाश में उड़ो तभी चलता है; उसके पहले पंखों का पता ही नहीं चल सकता है। कैसे जानोगे कि तुम्हारे पास भी पंख हैं, अगर तुम चले ही नहीं, उड़े ही नहीं?
तो बच्चा बैठा है किनारे घोंसले के, पकड़े है घोंसले के किनारे को जोर से; देखता है, लेकिन भरोसा नहीं जुटा पाता। मां-बाप लौट आते हैं, फुसलाते हैं, प्यार करते हैं; लेकिन बच्चा भयभीत है। बच्चा घोंसले को पकड़ रखना चाहता है, वह ज्ञात है। वह जाना-माना है। और छोटी जान और इतना बड़ा आकाश! घोंसला ठीक है, गरम है, सब तरफ से सुरक्षित है; तूफान भी आ जाए तो भी कोई खतरा नहीं है, भीतर दुबक रहेंगे। सब तरह की कोशिश असफल हो जाती है। बच्चा उड़ने को राजी नहीं है।
यह अश्रद्धालु चित्त की अवस्था है। कोई पुकारता है तुम्हें, आओ खुले आकाश में, तुम अपने घर को नहीं छोड़ पाते। तुम अपने घोंसले को पकड़े हो। खुला आकाश बहुत बड़ा है, तुम बहुत छोटे हो। कौन तुम्हें भरोसा दिलाए कि तुम आकाश से बड़े हो? किस तर्क से तुम्हें कोई समझाए कि दो छोटे पंखों के आगे आकाश छोटा है? कौन-सा गणित तुम्हें समझा सकेगा? क्योंकि नापजोख की बात हो तो पंख छोटे हैं, आकाश बहुत बड़ा है। पर बात नाप-जोख की नहीं है। दो पंखों की सामर्थ्य उड़ने की सामर्थ्य हैः बड़े से बड़े आकाश में उड़ा जा सकता है। और पंख पर भरोसा आ जाए तो आकाश शत्रु जैसा न दिखाई पड़ेगा, स्वतंत्रता जैसा दिखाई पड़ेगा; आकाश मित्र हो जाएगा।
परमात्मा में छलांग लेने से पहले भी वैसा ही भय पकड़ लेता है। गुरु समझाता है, फुसलाता है, डांटता है, डपटता है, सब उपाय करता है--किसी तरह एक बार... ।
जब उन दो पक्षियों ने--मां-बाप ने देखा कि बच्चा उड़ने को राजी नहीं तो आखिरी उपाय किया। दोनों ने उसे धक्का ही दे दिया। बच्चे को ख्याल भी न था कि वे ऐसी क्रूरता कर सकेंगे, कि इतने कठोर हो सकेंगे।
गुरु को कठोर होना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी जड़ता ऐसी है कि तुम्हें धक्के ही न लगें तो तुम आकाश से वंचित ही रह जाओगे। उस कठोरता में करुणा है।

अगर मां-बाप करुणा कर लें तो यह बच्चा सदा के लिए पंगु रह जाएगा। इसकी नियति भटक जाएगा, खो जाएगी, यह सड़ जाएगा उसी घोंसले में। घोंसला घर न रहेगा, कब्र बन जाएगा। और यह बच्चा अपरिचित रह जाएगा अपने स्वभाव से। उस स्वभाव का तो खुले आकाश में उड़ने पर ही एहसास होगा। वह समाधि तो तभी लगेगी जब अपनी क्षुद्रता को यह विराट आकाश में लीन कर सकेगा; जब अपने छोटेपन में यह बड़े से बड़ा भी हो जाएगा। जब इसकी आत्मा परमात्मा जैसी मालूम होने लगेगी, तभी इसकी समाधिस्थ अवस्था होगी।
बच्चे को पता भी नहीं था, समझ भी नहीं थी, ख्याल भी न था, कि यह होगा। धक्का खाते ही वह दो क्षण को खुले आकाश में गिर गया--फड़फड़ाया, घबड़ाया, वापस लौटकर घोंसले को और जोर से पकड़ लिया; लेकिन अब उस बच्चे में एक फर्क हो गया, जो उसके चेहरे पर भी देखा जा सकता था। अश्रद्धा खो गई है। पंख हैं। छोटे होंगे। आकाश इतना भयभीत नहीं करनेवाला है जितना अब तक कर रहा था। और एक क्षण को उसने खुले आकाश में सांस ले ली। अब अश्रद्धा नहीं है। थोड़ी देर में धक्के की अशांति चली गई, कंपन खो गया। मां-बाप उसे बड़ा प्यार दे रहे हैं, थपथपा रहे हैं, चोचों से सहला रहे हैं, उसे आश्वस्त कर रहे हैं कि वह अपने अनुभव को पी जाए। उसे अपने पंखों की समझ आ गई। वह पंख फड़फड़ाता है बीच-बीच में। अब पहली दफा उसे पता चला कि उसके पास पंख हैं, वह भी उड़ सकता है। फिर घड़ी भर बाद मां-बाप उड़े और बच्चा उनके साथ हो लिया।
ठीक यही घटना घटती है हर शिष्य और हर गुरु के बीच; और सदा से घटी है, और सदा ऐसे ही घटेगी। किसी-न-किसी तरह गुरु को शिष्य की अश्रद्धा को तोड़ना है; किसी-न-किसी तरह शिष्य को यह भरोसा दिलाना है कि उसके पास पंख हैं और आकाश छोटा है।
और उड़े बिना जीवन में कोई गति नहीं है। रोज-रोज उड़ना है। रोज-रोज अतीत
का घोंसला छोड़ना है। रोज-रोज जो जान लिया, उसकी पकड़ छोड़ देनी है, और जो नहीं जाना है उसमें यात्रा करनी है। सतत है यात्रा। अनंत है यात्रा। कहीं भी ठहर नहीं जाना है। पड़ाव भले कर लेना, घर कहीं मत बनाना। यही मेरी संन्यास की परिभाषा है।
पड़ाव-ठीक। रात अंधेरा हो जाए, घोंसले में विश्राम कर लेना, लेकिन खुले आकाश की यात्रा बंद मत करना। रुकना, लेकिन रुक ही मत जाना। रुकना सिर्फ इसलिए ताकि शक्ति पुनः लौट आए, तुम ताजे हो जाओ, सुबह फिर यात्रा हो सकेगी। बस ज्ञान पर उतना ही पड़ाव करना कि अज्ञात में जाने की क्षमता अक्षुण्ण हो जाए। ज्ञानी मत बनना। ज्ञानी बने तो घोंसला पकड़ गया। वही तो पंडित की परेशानी हैः जो भी जान लेता है, उसको पकड़ लेता है। उसको पकड़ने के कारण हाथ भर जाते हैं; और जो बहुत जानने को शेष था वह शेष ही रह जाता है। जानना और छोड़ना। जानना और छोड़ना।
कहावत हैः नेकी कर और कुएं में डाल। ठीक वैसा ही ज्ञान के साथ भी करना। जानो, कुएं में डालो। तुम सदा अज्ञात की यात्रा पर बने रहना। तो ही एक दिन उस चिरंतन से मिलन होगा। क्योंकि वह चिरंतन अज्ञात ही नहीं, अज्ञेय है।
ये तीन शब्द ठीक से समझ लेना। ज्ञात तो वह है जो तुमने जान लिया। अज्ञात वह है जो तुम कभी न कभी जान लोगे। अज्ञेय वह है जिसे तुम कभी न जान सकोगे। उसको तो स्वाद ही लेना होगा। उसे तो जीना ही होगा। जानने जैसी दूरी उसके साथ नहीं चल सकती। उसके साथ तो एक ही हो जाना होगा। उसके साथ तो डूबना होगा। वह तो मिलन है, ज्ञान नहीं। वहां तो तुम और उसको होना अलग न रह जाएगा। वहां तुम जानने वाले न रहोगे; वहां तुम उसी के साथ एक हो जाओगे।
उस परम घड़ी को लाने के लिए, ज्ञात को छोड़ना है, अज्ञात में यात्रा करनी है। और जब तुम अज्ञात की यात्रा में कुशल हो जाओगे, तब तुम्हें गुरु आखिरी धक्का देगा कि अब अज्ञात को भी छोड़ देता है और अज्ञात की यात्रा पर निकल जाता है, वह संन्यस्त। और अज्ञात को भी जो छोड़ देता है और अज्ञेय में लीन हो जाता है, वह सिद्ध। फिर कुछ और पाने को नहीं बचता। पानेवाला ही खो गया, तो अब पाने को क्या कुछ बचेगा?
ये कबीर के पद, ये वचन शिष्य और गुरु के बीच सेतु बनाने के लिए बड़े महत्वपूर्ण हैं। एक-एक शब्द को गौर से समझने की कोशिश करें।

मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे। कबीर शिष्य से कह रहे हैं कि मेरा और तेरा होना एक कैसे हो? और जब तक एक न हो, तब तक गुरु जो भी बताए वह बाहर ही बाहर होगा। तुम उससे सीख लोगे शब्द, सिद्धांत; पर गुरु जो वस्तुतः देना चाहता था, तुम उससे वंचित रह जाओगे।
बहुत मेरे पास भी मित्र आ जाते हैं जो थोड़ा-सा ज्ञान अर्जित करके संतुष्ट हो जाएंगे।
ज्ञान तो कूड़ा-कचरा है; उससे संतुष्ट मत हो जाना। जीवन चाहिए! ज्ञान
से क्या होगा? जान लो कितना ही परमात्मा के संबंध में--क्या सार है? ऐसे ही जैसे भूखा कितना ही जान ले भोजन के संबंध में, सारा पाकशास्त्र कंठस्थ कर ले--क्या होगा? पूरा पाकशास्त्र भी तो एक जून की भूख नहीं मिटा सकता।
वेद पाकशास्त्र हैं। उपनिषद, गीता पाकशास्त्र हैं। उनमें भोजन की चर्चा है; वहां भोजन नहीं है। चचों में कहीं भोजन होता है?
मैं तुमसे कुछ कहता हूं--उसमें भोजन नहीं है; वह जो कहता हूं, वह तो केवल इशारा है। वह तो केवल इशारा है--उस तरफ, जहां भोजन है। तुम उससे ही तृप्त मत हो जाना। तुम इशारे को सम्हालकर मत रख लेना। उसको संपदा मत समझ लेना। मैं जो कहूं, उसे तो भूल जाना; मैं जिस तरफ इशारा कर रहा हूं, उस तरफ की यात्रा पर निकल जाना। मुझे सुनकर भी तुम पंडित हो सकते हो--तब तुम चूक गए; तब तुम सरोवर के किनारे थे और प्यासे ही लौट गए; सरोवर के किनारे थे और पानी के संबंध में जानकर लौट गए, और पानी को न पीया।
परमात्मा के संबंध में जानने का कुछ भी तो सार नहीं। कोरे शब्द हवा में बने बबूले हैं। उनमें कुछ भी नहीं है। लेकिन वे महत्वपूर्ण मालूम होते हैं, क्योंकि अहंकार को भरते हैं। थोड़ा ज्यादा जान लिया, थोड़ी संपदा और भीतर धन की, शब्दों की इकट्ठी हो गई--अकड़ और बढ़ जाती है।
अहंकार पंडित होना चाहता है, प्रज्ञावान नहीं। अहंकार संग्रह करना चाहता है, समर्पण नहीं। अहंकार खोना नहीं चाहता, बचना चाहता है। और तुम जब तक खोओगे नहीं, तब तक तुम्हारे बचने का कोई भी उपाय नहीं।
तो कबीर कहते हैं, मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होई रे। हो कैसे यह घटना कि मेरा- तेरा मन एक हो जाए? क्योंकि तू सब तरह की अड़चनें खड़ी कर रहा है। शिष्य अड़चनें खड़ी करता है। पहले तो वह विवाद खड़ा करता है। पहले तो वह कहता है, सिद्ध करो; जब तक सिद्ध न करोगे, मानेंगे कैसे? हमें कोई अंधा समझा है? हम कोई अंधे अनुयायी हैं? हम तो सोच-विचार करके चलेंगे।
सोच-विचार ही तुम्हारे पास होता तो गुरु की कोई जरूरत न थी। तुम सोच-विचार में ही समर्थ होते तो तुम अपने ही पैर यात्रा कर लेते, किसी के सहारे की जरूरत नहीं थी।
और तुम कहते हो, हम अंधे थोड़े ही हैं? अंधे तुम हो; बड़े गहन रूप से अंधे हो। और यह अंधापन कोई आंखों का ही नहीं है, भीतर की आंखों का है। यह अंधापन आध्यात्मिक है। और इस अंधेपन में तुम जिद्द करो, विवाद करो--तुम किस चीज को बचाने के लिए विवाद कर रहे हो? तुम्हारे पास कुछ भी तो नहीं है। अगर तुमने ज्यादा विवाद किया, ज्यादा तर्क का सहारा लिया--अपने अंधेपन को ही बचा लोगे, और तुम्हारे पास बचाने को कुछ भी नहीं है।
विचार तुम्हारे पास हैं नहींः विचारों की भीड़ है, विचार नहीं हैं। विचार क्षमता का नाम है, विचारों की भीड़ का नाम नहीं है। तुम्हारे पास विचार तो बहुत हैं। तुम्हारी खोपड़ी एक बाजार है, जहां हजारों तरह के विचार हैं; लेकिन विचार नहीं है। विचार का अर्थ होता हैः जानने की क्षमता। और ये जो विचार हैं जिनको तुम अपने कह रहे हो, कोई भी तुम्हारे पास नहीं हैं, सब उधार हैं। न मालूम कहां-कहां की झूठन तुमने इकट्ठी कर रखी है। और उन पर तुम इतरा रहे हो। कूड़ाघर पर बैठकर तुम सिंहासन समझ रहे हो। इनमें से एक भी विचार तुम्हारा नहीं है। बचाओगे क्या? विवाद क्या करना है?
ज्यादा विवाद और तर्क तुम्हें तुम्हारे गुरु से दूरी पर रख देगा। इसमें गुरु कुछ नहीं खो रहा है। वहां तो पाने-खोने को कुछ बचा नहीं। तुम्हीं खो रहे हो।
यह तो ऐसे ही है, जैसा बुद्ध ने कहा है कि किसी गांव में ऐसा हुआ कि एक आदमी को तीर लग गया। भूल से लग गया। जंगल से गुजरता था शिकारी, उसका तीर लग गया। फेंका तो किसी जानवर की तरफ गया था, आदमी बीच में आ गया। पर आदमी कोई

साधारण आदमी न था, विवादी था, दार्शनिक था, बड़ा तर्कनिस्र था। भीड़ इकट्ठी हो गई, लोग उसका तीर निकालना चाहते हैं। गांव का वैद्य आ गया। पर उसने कहा कि ठहरो, पहले यह पक्का हो जाए कि तीर किसने मारा? क्यों मारा? तीर विष-बुझा है या साधारण है, घातक है या मैं बच सकूंगा? तीर मत निकालो अभी। पहले सब तय हो जाए। और वह मायावादी दार्शनिक था। उसने कहा कि पहले यह भी पक्का हो जाए कि तीर है भी? क्योंकि ज्ञानियों ने कहा है, संसार माया है। जब पूरा संसार ही स्वप्नवत है तो तीर स्वप्न में लगा है या यथार्थ में?
बुद्ध उस गांव से निकलते थे। वे भी उस भीड़ में खड़े थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, ठीक से सुन लो उसकी बात। यही तुम्हारी दशा है। यह नासमझ, यह सब चर्चा बाद में कर ले तो अच्छा है; पहले तीर निकल जाने दे। मगर इसका कहना भी ठीक है कि अगर तीर है ही नहीं तो निकालोगे क्या? यह पहले सब जान लेना चाहता है, तब तीर को निकालने देगा। और इसे पता ही नहीं कि इस बीच, इस जानकारी में यह समाप्त हो जाएगा और तीर कभी न निकलेगा।
बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा, ऐसा ही दुख का तीर तुम्हारे जीवन में लगा है। मैं तुमसे कहता हूं कि निकाल लेने दो। तुम कहते हो, दुख क्या है? है भी? सुख मिल सकता है? कोई संभावना? कभी किसी को मिला है कि सब कपोलकल्पना है? तुम पूछते हो, दुख कहां से आया? क्यों आया? हम दुखी क्यों हैं? परमात्मा ने दुख क्यों बनाया? और जो दुख बनाता है, वह परमात्मा कैसा है? तुम पूछते हो, दुख स्वप्न है या सत्य है। और बुद्ध ने कहा, मैं उस वैद्य की तरह हूं जो तुमसे प्रार्थना कर रहा है कि तीर निकाल लेने दो, फिर पीछे समय बहुत है, तब तुम चर्चा कर लेना। लेकिन तुम कहते हो, पहले सब साफ हो जाए, तब तीर निकालने देंगे। तब तुम मर जाओगे, तीर न निकल पाएगा।
और बुद्ध ने यह भी कहा, और मैं जानता हूं कि एक दफा तीर निकल जाए, फिर कोई तीर के संबंध में चर्चा नहीं करता। बात ही खत्म हो गई।
गुरु कहता है, तुम्हारी अज्ञान की अवस्था को बदल देने दो... । तुम कहते हो, पहले सब निर्णय हो जाए, पहले सब तर्क से सिद्ध हो जाए, सब प्रमाण मिल जाएं, साक्षी, गवाहियां जुटा ली जाएं--तभी मैं आगे बढूंगा। मैं कोई अंधा अनुयायी नहीं हूं; मैं सोच-विचारवाला आदमी हूं।
तब तुम ऐसे ही खो जाओगे। तब सरोवर निकट था; लेकिन सरोवर असमर्थ था, क्योंकि तुमने अंजुलि ही न बांधी। सरोवर निकट था, तुम्हारी प्यास बुझाने को तत्पर था, आतुर था; लेकिन तुम झुककर अंजुलि बांधकर सरोवर से पानी लेने को तैयार न हुए। तुम प्यासे ही मर जाओगे। ऐसे ही बहुत बार तुम मरे हो। ऐसे ही बहुत बार तुम विवाद में जीये हो।
और अज्ञान बड़ा विवादी है। ज्ञान तो निर्विवाद है। वहां कोई विवाद नहीं है। अज्ञान बड़ा विवादी है। विवाद अज्ञान की रक्षा का उपाय है।
अज्ञान अपनी रक्षा करता है।
मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।।
और बहुत कठिनाई है। कबीर कहते हैं, हम आंख की देखी बात कर रहे हैं, तुम कागज की लिखी बात कर रहे हो। तुमने वेद पढ़ लिए, अब तुम वेद से भरे हो। तुमने गीता पढ़ ली, अब गीता के श्लोक तुम्हारी खोपड़ी में घूम रहे हैं। तुम कुरान कंठस्थ किए हो। और इन कागज पर लिखी बातों के सहारे तुम आंखवाले के पास विवाद करने पहुंच जाते हो। कुछ उसकी हानि नहीं। करो मजे से--तुम्हारी मौज है। लेकिन वह देखता है कि तीर चुभा है तुम्हारे जीवन में। जहर उसका फैलता जाता है प्रतिपल। तुम्हारा चून उसके जहर को तुम्हारे पूरे शरीर में दौड़ा रहा है। तुम जल्दी ही चुक जाओगे। और ये कागज की लिखी बातें कुछ भी सहारा न बनेंगी।
तुम मर रहे हो प्रतिपल, क्योंकि मौत किसी भी क्षण आ सकती है। और तुम किताबों में बड़े कुशल हो गए हो।
एक मित्र मेरे पास आए। कहने लगे, और सब ठीक है; वेद के संबंध में आपका क्या ख्याल है? वेद का क्या करोगे? उसके संबंध में ख्याल का भी क्या करोगे? नहीं, कहने लगे, मैं आर्यसमाजी हूं और अब तक यह साफ न हो जाए कि वेद के संबंध में आपकी क्या दृष्टि है, तब तक मेरा और आपका कोई तालमेल नहीं हो

सकता। अगर आप वेद से राजी हैं तो सब ठीक है। लेकिन मैंने सुना है, आप वेद से राजी नहीं हैं।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।
सिद्धांत भारी हैं लोगों के मन पर। बड़ी गहन पकड़ है उनकी। और उन सिद्धांतों में है क्या?
मैंने उनसे कहा कि, अगर वेद को पढ़कर, जानकर आप कहीं पहुंच गए, तो मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं। बात खतम हो गई। अगर वेद आपकी नाव बन गया तो ठीक है। लेकिन कागज की नाव से कभी कोई पार नहीं हुआ। फिर कागज की नाव चाहे वेद की हो, चाहे कुरान की, चाहे बाइबिल की, चाहे गीता की, चाहे मेरी किताबों की-- इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। नाव कागज की है--डूबेगी।
उन्होंने कहा, और किताबें और हैं, वेद की बात और है। वेद तो स्वयं परमेश्वर ने रचा है। वही कुरान का माननेवाला भी कहता है। वही बाइबिल का माननेवाला भी कहता है। जिस किताब में भी तुम्हें डूब मरना हो, जिस किताब की भी नाव बनानी हो, उसी किताब के माननेवाले यही कहते हैं कि यह परमात्मा की रची हुई है। लेकिन शब्द की नाव से कब कौन पार हुआ है? नाव तो निःशब्द की चाहिए। नाव तो अनुभव की चाहिए, सिद्धांतों की नहीं। लेकिन अनुभव कीमती चीज है। जीवन से चुकाना पड़ता है मूल्य। वेद तो बाजार से खरीद लाओ, सस्ता मिलता है। और वेद के तो तुम जो भी अर्थ करना चाहो, कर लो; अर्थ तो तुम ही करोगे? वेद तो कुछ तुम्हें रोक न सकेगा कि यह अर्थ मेरा नहीं है। इसलिए वेद को थोड़े ही तुम पढ़ते हो; पढ़ते तो तुम अपने ही अर्थ को हो--वेद में पढ़ते हो। पढ़ते तुम अपने ही अर्थ को हो; वेद का तो बहाना है। अपने ही अज्ञान को तुम वहां से भी सुरक्षित करते हो।
ध्यान रहे, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है--ऐसी जब तुम्हें प्रतीति हो, ऐसा जब तुम पाओ कि दीन-हीन, कि न कोई ज्ञान है, न कोई प्रेम है, जीवन में कुछ भी नहीं है, पाओ तो बिल्कुल रिक्त--तभी तुम गुरु के पास आने के योग्य हो पाओगे। क्योंकि अगर तुम अपने से भरे हो, तो गुरु तुममें कैसे भर सकेगा? तुम जब खाली आओगे, खाली और नग्न, निर्वस्त्रः सब वस्त्र सिद्धांतों के, शास्त्रों के छोड़कर आओगे; तुम ऐसे आओगे, जैसे छोटा बच्चा आता है, बिना किसी धारणा के, निर्धारणा में--तभी तुम गुरु से मिल सकोगे। और गुरु जीवित शास्त्र है; मुर्दा शास्त्रों को लेकर तुम गुरु के पास मत आना। क्योंकि गुरु खुद ही वेद है; गुरु खुद ही गीता है--और जीवंत है। गुरु का अर्थ ही इतना हैः जिसमें धर्म फिर से पुनरुज्जीवित हुआ है; जिससे परमात्मा फिर से बोला है; जिसकी बांसुरी को परमात्मा ने फिर अपने होठों पर रखा है। तुम पुराने गीत लेकर आते हो, जो बासे हो चुके, और सदियों में जिन पर धूल जम गई, और सदियों में आदमियों के हाथ चलते-चलते जो बहुत दिन चले हुए नोट की तरह गंदे हो गए। ताजा बरसता हो वहां तुम बासे को लेकर आते हो? जहां सद्यःस्नात सत्य जन्म रहा हो, वहां तुम सिद्धांतों और शास्त्रों की सड़ी-गली बातों को लेकर आते हो। ये बातें भी सड़-गल जाएंगी। और मुझे पक्का पता है कि, लोग इन बातों को लेकर भी दूसरे गुरुओं के पास जाएंगे, जो जीवित होंगे। वही भूल होगी, जो अभी हो रही है। वही भूल सदा होती जाती है।
बुद्ध के लोग वेद की बात लेकर जाते थे, चूंकि बुद्ध ने वेद का समर्थन नहीं किया। और कोई बुद्ध कभी किसी वेद का समर्थन नहीं करेगा। यह कोई वेद का विरोध नहीं है; यह तो सिर्फ एक छोटी सीधी-सी बात है कि जीवंत सत्य मरे हुए शब्दों का समर्थन नहीं करेगा। अगर आज बुद्ध हों, तो खुद अपनी ही वचनों को, धम्मपद में जो वचन उन्होंने कहा, उनको भी वे उसी तरह इंकार कर देंगे, जिस तरह उन्होंने वेद के वचन इंकार कर दिए। सवाल वेद का नहीं है; सवाल किताब और जीवंतता का है।
कबीर कहते हैं, मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे। मेल कैसे हो? ऐसा शिष्य अगर गुरु के पास आ भी जाए, तो कितना ही पास रहे, मेल नहीं हो पाता। वह ऐसा होता है जैसे रेल की पटरियां पास-पास होती हैं दोनों, मगर समानांतर, कहीं मिलती नहींः एक कागज से उलझा, एक जीवन जी रहा। कागज और जीवन में क्या संबंध?--समानांनतर! शास्त्र और सत्य समानांतर रेखाएं हैं, जो कहीं नहीं मिलतीं--बस रेल की पटरियां हैं। पास ही बनी रहती हैं, चार फीट का फासला है; लेकिन वह फासला पूरा नहीं हो पाता। और तुम्हें अगर कहीं मिलती

दिखाई पड़ती हों तो समझना कि वह भ्रम है। बहुत दूर, अगर तुम देखोगे, तो क्षितिज पर रेल की पटरियां मिलती हुई मालूम पड़ती हैं। बस वे मालूम पड़ती हैं; अगर तुम जाओगे, वहां भी तुम पाओगे, वही चार फीट का फासला है। वे कहीं मिलती नहीं। समानांतर रेखाएं कहीं मिलती ही नहीं।
और कबीर यही कह रहे हैं कि आंख की देखी बात और कागज की लिखी बात समानांतर रेखाएं हैं। मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ अरुझाई रे। मैं सुलझाने की कोशिश कर रहा हूं, और तू और उलझाए चला जा रहा है।
सिद्धांत सुलझाते नहीं, उलझाते हैं; क्योंकि एक सिद्धांत दस प्रश्न खड़े करता है। एक प्रश्न का उत्तर अगर तुमने किताब से चुन लिया, तो वह उत्तर हजार नए प्रश्न खड़े कर देता है।
जीवन में समाधान है। किताबों में प्रश्न हैं, उत्तर हैं, उत्तरों से पैदा हुए नए प्रश्न हैं। इसलिए हर किताब और किताबों को जन्म देती है। जैसे आदमी बच्चों को जन्म देते हैं, वैसे किताबें किताबों को जन्म देती हैंः क्योंकि एक किताब प्रश्न उठा देती है, अब दूसरी किताब उत्तर देती है; उत्तर से और प्रश्न उठते हैं--तीसरी किताब की जरूरत हो जाती है। तो सातत्य बना रहता है।
हजारों टीकाएं हैं गीता पर। क्योंकि गीता कोई प्रश्नों का हल नहीं कर सकती। और जो भी हल देती है, उन पर नए प्रश्न खड़े हो जाते हैं; उनका उत्तर देना पड़ता है। फिर हर टीका पर टीकाएं हैं। और टीकाओं पर टीकाओं पर भी टीकाएं हैं--सिलसिला जारी है। उसमें कोई अंत नहीं हो सकता। वह जारी रहेगा। शब्द किसी प्रश्न का हल करते ही नहीं। हल तो बहुत दूर है, शब्द प्रश्न
को छू भी नहीं पाते। क्योंकि प्रश्न तो उठता है जीवन से, और उत्तर आता है किताब से--समानांतर।
जीवन में दुख है। तुमने दुख को जाना है। तुमने दुख के आंसू बहाए हैं। दुख में तुम्हारा हृदय जार-जार रोया है। दुख में तुम्हारे रोएं-रोएं ने तड़फन अनुभव की है। यह दुख तो आया जीवन से, अब तुम जाते हो किताब में उत्तर लेने कि दुख क्यों है? किताब कहती है, पिछले जन्मों के कर्म के कारण। लेकिन सवाल यह है कि पिछले जन्मों में दुख क्यों था? वह और पिछले जन्मों के कर्म के कारण! लेकिन तब सवाल उठता है कि पहला जब जन्म हुआ होगा, तब कहां से दुख आया? तब किताब कहती है, सब भगवान की लीला है। पहले ही कह देते, इतनी देर क्यों लगाई? भगवान की लीला से कुछ हल होता है? फिर तुम वहीं के वहीं आ गए।
जीवन का दुख भीतर है। भगवान की लीला से क्या हल होता है? और भगवान क्या कोई दुष्ट परपीड़क, कोई महा हिटलर की भांति है कि लोगों को सता रहा है, इसमें लीला ले रहा है? लोग कष्ट पा रहे हैं तो भगवान क्या उन बच्चों की तरह है जो मेंढकों को सताते हैं? अगर उनसे पूछो तो वे कहते हैं, खेल रहे हैं। आदमियों को भगवान सता रहा है, दुखी कर रहा है? यह उसकी लीला है? तो भगवान के दिमाग को इलाज की जरूरत है। वह सेडिस्ट मालूम होता है, दुखवादी मालूम होता है, दुष्ट मालूम होता है। मस्तिष्क उसका ठीक नहीं है।
लेकिन ये किताब से आनेवाले उत्तर सब ऐसे ही होंगे। थोड़ी-बहुत देर किताब में तुम उलझ जाओ, बस इतना ही है। जैसे ही लौटकर आओगे, पाओगे कि दुख तो अपनी जगह खड़ा है, किताब हल नहीं कर पाती। और इसे जान लेने से भी कि पिछले जन्मों के कारण दुख हैं, दुख मिटेगा नहीं। इसे भी जान लेने से कि परमात्मा की लीला है, दुख मिटेगा नहीं, दुख तो रहेगा।
दुख मिटेगा ध्यान से, विचार से नहीं। और ध्यान की यात्रा बड़ी अलग है।
वह कागज में लिखी हुई यात्रा नहीं है; वह आंखों से देखने की यात्रा है। ध्यान का अर्थ हैः दृष्टि का आभिर्वाव। ध्यान का अर्थ हैः तुम्हारा जाग जाना। वहां मिटेगा दुख; और वहां सब समाधान हो जाएगा। और असली सवाल यह नहीं है कि दुख कहां से आया है; असली सवाल यह है कि दुख कैसे मिटे?
जब तुम किसी बीमारी से ग्रस्त होते हो, तो तुम चिकित्सक से यह नहीं पूछते कि बीमारी कहां से आई, क्यों आई, जिस बैक्टीरिया की वजह से बीमारी पैदा हुई, वह कहां से आया? क्यों आया, भगवान ने बैक्टीरिया बनाए क्यों टी.बी. और कैंसर के? इनके बिना बनाए न चल सकता था? सिर्फ फूल और तितलियों से

काम नहीं चल सकता था? नहीं, तब तुम इसकी चिंता नहीं करते। तुम चिकित्सक से कहते हो, इस फिक्र में पड़ो ही मत। तुम मेरा इलाज करो। दुख कैसे जाए, तुम यह पूछते हो।
किताब के साथ बंधा हुआ आदमी हमेशा पूछता है, दुख कहां से आया? और सदगुरु बताता है कि दुख कैसे जाए?
बुद्ध ने कहा है, तुम मुझसे पूछो मत कि परमात्मा है या नहीं। तुम मुझसे इतना ही पूछो कि दुख कैसे जाए। जब दुख चला जाएगा, तब तुम जान लोगे कि परमात्मा है या नहीं। उस दुख-निरोध की अवस्था में तुम्हारी आंखें साफ होंगी, आंसू सूख गए होंगे। जीवन की पीड़ा तिरोहित हो गई होगी। स्वास्थ्य की मगनता उठेगी भीतर--एक ललक की भांति। तुम्हारा जीवन एक उत्सव बन जाएगा। उस उत्सव में तुम जान पाओगे कि परमात्मा की लीला क्या है। दुख में कहीं कोई जान सकता है लीला को? उत्सव में, आनंद की अवस्था में, जब तुम नाच उठोगे, तभी... ।
तो बुद्ध कहते हैं, मत पूछो ईश्वर; मत पूछो, किसने दुनिया बनाई? ... व्यर्थ की बातें हैं। दार्शनिकों को करने दो यह व्यर्थ की बकवास।
मैं कहता सुरझावनहारी... । कबीर कहते हैं, मैं सुलझाने की कोशिश कर रहा हूं कि दुख कैसे जाए, अंधेरा कैसे मिटे, अंधापन कैसे मिटे; तू राख्यो अरुझाई रे--तू ऐसे सवाल उठाता है कि चीजें और उलझ जाती हैं।
इस बात को बहुत ठीक से समझ लेना, क्योंकि यही तुम्हारे और मेरे बीच भी
घट रहा है। मेरी सारी चेष्टा है कि तुम कैसे सुलझ जाओ। लेकिन तुम सब तरह के प्रतिरोध खड़े करते हो। तुम सब तरह की बाधाएं डालते हो। निश्चित ही तुम्हें पता नहीं है, तुम क्या कर रहे हो; अन्यथा तुम क्यों करते? तुम सब तरह की बाधाएं डालते हो।
एक मित्र कुछ दिन पहले आए। उन्होंने कहा, यह ध्यान जो आप करवा रहे हैं, मैंने करके देखा--शांति मिलती है, बड़ा अच्छा लगता है; लेकिन जैन-धर्म में इसका उल्लेख कहीं नहीं है। तुम्हें शांति मिलती है, तो जैन-धर्म में कहीं उल्लेख नहीं है--उस उल्लेख को चाटोगे? उस उल्लेख का करना क्या है? नहीं, तो उन्होंने कहा कि मैं तो जैन-धर्म का अनुयायी हूं, तो थोड़ा शक होता है; क्योंकि अगर यह ध्यान ठीक होता, तो महावीर स्वामी ने कहीं न कहीं उल्लेख तो किया होता। सब शास्त्र देख डाले, मगर इसका कहीं उल्लेख नहीं है। इसलिए ध्यान करना बंद कर दिया है।
शांति पर भरोसा नहीं है। अपनी ही शांति पर भरोसा नहीं है। अपने अनुभव
पर भरोसा नहीं है। आदमी कितनी गहन मूढ़ता में रहता है। वह महावीर ने क्यों नहीं कहा--वह उलझा रहा है मामले को। और चूंकि महावीर ने नहीं कहा, इसलिए जरूर कहीं कोई न कोई गड़बड़ होगी। और महावीर ने कुछ ठेका लिया है सब कुछ कह जाने का? ये सज्जन उनको भी मिल जाएं, तो वे भी अपना सिर पीट लें। महावीर ने जो भी कहा है, उसकी सीमा है; कहने की सीमा है। अनकहा बहुत रह गया है, जो कभी न चुकेगा। सदगुरु आते रहेंगे, कहते रहेंगे और अनकहा सदा बाकी रहेगा। यह सागर बड़ा है। इसमें महावीर भर लाए थोड़ा-सा पानी अपने पात्र में, उससे कोई सागर थोड़े ही चुक जाता है?
तुम प्यासे मर रहे हो; लेकिन तुम कहते हो, यह जो जल आप बता रहे हैं, यह महावीर की गगरी में नहीं है। तुम्हें प्यास की फिक्र है? नहीं, लेकिन लोग बड़े... ।
बड़ी हैरानी की घटना है यह कि तुम अपनी अशांति को टूटने नहीं देते, अपने दुख को टूटने नहीं देते, तुम अपनी भटकन को मिटने नहीं देते। तुम उलझाए चले जाते हो। अजीब-अजीब प्रश्न लेकर लोग उलझते हैं। और अगर उनकी तरफ तुम देखो तो वे बड़े गंभीर मालूम पड़ते हैं। उनको होश भी नहीं कि वे क्या कर रहे हैं, इसलिए ये बातें उठा रहे हैं।
आदमी बिल्कुल बेहोश है।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे। मैं कहता तू जागत रहियो,
तू रहता है सोई रे। कबीर कहते हैं कि सारी शिक्षाओं की शिक्षा तो एक ही है कि तुम जागते रहो, मगर तुम सो-सो जाते हो। तुम हजारा बहाने खोज लेते हो सोने के।

जीसस, आखिरी रात, जिस दिन उन्हें फांसी लगनेवाली है, उसकी एक रात पहले, अपने शिष्यों को इकट्ठा किए एक बगीचे में, और उन्होंने कहा कि मैं आखिरी प्रार्थना कर लूं, तुम जागते रहना। यह रात आखिरी है। और यह ईश्वर का बेटा फिर दुबारा तुम्हारे साथ प्रार्थना करने को नहीं होगा।
जीसस ने प्रार्थना की, घड़ी भर बाद वे वापस आए, देखा, सारे शिष्य सो रहे हैं। उन्होंने जगाया। उन्होंने कहा, यह आखिरी रात... । उन्होंने कहा, क्या करें? दिनभर के थके मांदे हैं, झपकी लग गई। अब फिर कोशिश करेंगे। जीसस फिर घड़ीभर बाद प्रार्थना से आंख खोले; देखा, वे सब फिर घुर्रा रहे हैं।
क्या हो गया?
उन्होंने कहा, कोशिश तो करते हैं, नींद आ-आ जाती है। कोशिश करते ही नहीं हैं। वह भी बहाना है। वह भी सिर्फ तरकीब है। अगर तुम कोशिश करो, तो नींद कैसे आ जाएगी? अगर तुम कोशिश करो तो नींद तो आ नहीं सकती। अगर ठीक से समझो तो जिन लोगों को नींद नहीं आती, उनको इसलिए नहीं आती कि वे कुछ कोशिश करते हैं नींद को लाने की। सौ में निन्यानबे आदमी जिनको रात में नींद नहीं आती, उनका कुल कारण इतना होता है कि वे नींद को आने नहीं देते--कोशिश के कारण। वे कोशिश करते हैं। कोई गायत्री-मंत्र पढ़ता है, कोई कुछ करता है, कोई करवट बदलता है, सोचता है नींद आ जाए आंख बंद करता है, सोचता है नींद आ रही है, वह नहीं आती है। नींद को लाने के लिए कोशिश की जरूरत ही नहीं है। नींद तो आती ही तब है जब कोई कोशिश नहीं होती। क्योंकि कोशिश जगाती है। कोशिश और नींद विरोधी हैं।
तो शिष्य कह रहे हैं, कोशिश तो हम करते हैं। लेकिन वह कोशिश झूठी है।
वे करते नहीं हैं, या वे अपने को समझाते हैं कि हम कोशिश तो कर रहे हैं। लेकिन वह कोशिश कुनकुनी है। ऐसा थोड़ा-सा करते हैं कि जब जीसस कहते हैं तो कर लो। वस्तुतः उन्हें भरोसा नहीं है कि यह आखिरी रात है। उन्हें यह भी भरोसा नहीं है कि कल जीसस विदा हो जाएंगे। उन्हें यह भी भरोसा नहीं है कि प्रार्थना में कोई सार है। श्रद्धा नहीं है।
जब जीसस उनसे विदा होते हैं तो उनमें से एक शिष्य कहता है कि चाहे कुछ
भी हो जाए, सदा ही मैं तुम्हारे साथ रहूंगा। जीसस ने कहा, तू इस तरह की बातें मत कर, क्योंकि मुर्गे के बांग देने के पहले तू तीन दफे मुझे इनकार कर चुका होगा। आधी रात जा चुकी है। मुर्गे को बांग देने में ज्यादा देर नहीं है। लेकिन उस शिष्य ने कहा कि, नहीं, मेरी भक्ति अटूप है। मेरी श्रद्धा अपार है। मैं कभी आपको इनकार न करूंगा। फिर जीसस पकड़ लिए गए। दुश्मन की भीड़ उन्हें ले जाने लगी। वह शिष्य भी पीछे-पीछे भीड़ में साथ हो लिया कि देखें, क्या होता है। बाकी शिष्य तो भाग गए। वह एक साथ हो लिया। मशालों की रोशनी में भीड़ ने अनुभव किया कि कोई एक अजनबी साथ है, तो उसको पकड़ लिया और कहा कि तू कौन है? क्या तू जीसस का साथी है? उसने कहा कि नहीं, मैं तो उनको जानता ही नहीं। कौन जीसस? जीसस ने पीछे मुड़कर कहा कि देख, अभी मुर्गे ने बांग भी नहीं दी। अभी रात बहुत बाकी है।
शिष्य और गुरु के बीच कौन-सी घटना घटे ताकि सेतु बन जाए। वह घटना है जागरण की। गुरु जागा है, जैसे हिमालय के उत्तंग शिखर पर है उसका जागरण। तुम सोए हो--गहन अंधेरी घाटी में। फासला बहुत है। गुरु कुछ कहता है, तुम्हारी नींद में तुम कुछ और अर्थ लेते हो। गुरु कुछ और कहता है, तुम कुछ और समझते हो। गुरु कुछ और कहता है, तुम कुछ और व्याख्या कर लेते हो।
तुम्हारे सपने, तुम्हारी नींद, तुम्हारा अंधापन सब उसमें मिल जाते हैं और सब विकृत कर देते हैं।
तुम जागो! जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे तुम गुरु के करीब आने लगे। जागरण ही एक मात्र निकट आने का उपाय है।
मुझसे शिष्य पूछते हैं कि आपके हम ज्यादा से ज्यादा निकट कैसे आएं? एक
ही उपाय है कि ज्यादा से ज्यादा जागो। और असली सवाल मेरे निकट आना थोड़े ही है; असली बात तो मेरे बहाने परमात्मा के निकट जाना है। मेरे पास बैठ जाने से थोड़े ही तुम मेरे निकट हो जाओगे। मेरे चरणों को पकड़ लेने से थोड़े ही तुम मेरे निकट हो जाओगे। उससे तो कुछ भी न होगा। वह तो तुम धोखा दे रहे हो अपने आपको। तुम जागोगे तो ही मेरे निकट होओगे। क्योंकि यह निकटता तो भीतर की

है, बाहर की नहीं। तुम मेरे जैसे ही होने लगोगे, तो ही मेरे निकट होओगे। तुम अपने जैसे बने रहे तो दूरी बनी रहेगी।
दो ही उपाय हैं। या तो गुरु सो जाए तो निकटता हो सकती है, या शिष्य जग जाए तो निकटता हो सकती है। गुरु सो नहीं सकता; क्योंकि जो जाग गया, उसके सोने का उपाय नहीं। पीछे लौटना होता ही नहीं। जो जान लिया, उससे वापस लौटना होता ही नहीं। गुरु सो नहीं सकता। एक ही उपाय है कि तुम जाग जाओ। कबीर कहते हैं, मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
और जागना कोई ऐसी बात नहीं है कि मंत्र की तरह तुम रटते रहो तो जाग जाओगे। जागना कोई मंत्र नहीं है, जागना तो जीवन की विधि है। तुम चौबीस घंटे जागे हुए जीओगे तो ही धीरे-धीरे करके जागरण का गुण तुममें इकट्ठा होगाः बूंद-बूंद जागरण इकट्ठा होगा, तब तुम्हारी गागर भरेगी। एक-एक कण इकट्ठा करना पड़ेगा। तब तुम्हारे जागरण का संग्रह होगा। भोजन करो तो जागे हुए। भोजन करते वक्त बस भोजन ही करो, मन में दूसरे विचार न आने दो; क्योंकि वे नींद ले आते हैं, सपना ले आते हैं। जागरण खो जाता है। राह पर चलो तो जागे हुए; एक-एक कदम होश में उठे। छोटे-से-छोटा काम भी करो तो जागे हुए। जागने को तुम जीवन की विधि बना लो, जीवन की शैली बना लो। ऐसा नहीं कि एक घंटे पर सुबह बैठकर जागने का उपाय कर लिया और फिर तेईस घंटे भूल गए। तो जागरण कभी भी पैदा न हो पाएगा। सतत चौबीस घंटे चोट मारनी पड़ेगी, तो ही तुम्हारी नींद टूटेगी। हथौड़ी की तरह तुम चोट मारते ही रहो, कि मैं जागा हुआ ही सब कुछ करूंगा। और अगर तुम कोई काम कर रहे हो--समझो कि तुम स्नान कर रहे हो, और भूल गए, स्मृति खो गई, ऐसे ही कर लिया यंत्रवत, डाल लिया पानी बिना होश के; जैसे ही याद आ जाए, फिर से स्नान करो, जागकर करो। उतनी सजा दो कि ठीक इतना समय गया बिना जागे, अब फिर से जागकर करेंगे।
ऐसा हुआ कि बुद्ध जब बुद्ध न हुए थे तब एक गांव से गुजर रहे हैं। एक साधक साथ है। एक मक्खी बुद्ध के कान पर आकर बैठ गई है। वे साधक से बात कर रहे हैं। उन्होंने मक्खी को ऐसे ही मूर्छित, बात को बिना तोड़े, होश को बिना मक्खी की तरफ ले जाए, यंत्रवत उड़ा दिया--जैसा कि हम करते रहते हैं। कोई जरूरत नहीं है, नींद में भी कोई मक्खी बैठ जाए तो तुम उड़ा देते हो; मच्छर आ जाए तो हाथ हिला देते हो। वह ऑटोमेटिक है, यंत्रवत है। इसमें तुम्हारे होश की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तत्क्षण बुद्ध को याद आया। वे खड़े हो गए। तब मक्खी न थी कान पर, उड़ चुकी थी। क्योंकि मक्खी थोड़े ही फिक्र करती है कि तुम जागकर उड़ाते हो कि सोए हुए उड़ाते हो। मक्खी तो उड़ गई थी। बुद्ध खड़े हो गए, बात रोक दी। हाथ को फिर से उठाया, और मक्खी को उड़ाया, जो थी ही नहीं। वह जो साधक खड़ा था, उसने कहा, क्या आपका दिमाग कुछ अस्त-व्यस्त हो गया है? यह क्या कर रहे हो? मक्खी तो जा चुकी। वह तो आप उड़ा चुके। बुद्ध ने कहा, मक्खी को नहीं उड़ा रहा हूं; अब जागकर उड़ा रहा हूं। मक्खी से क्या लेना-देना। लेकिन भूल हो गई, चूक गया। उतना कृत्य मूर्छा में हो गया, नींद में हो गया। और जितने कृत्य तुम नींद में करोगे, उतनी ही नींद इकट्ठी होती चली जाती है। नींद एक गुणधर्म है, एक क्वालिटी है; और जागना भी एक गुणधर्म है।
ये चेतना के दो ढंग हैं।
तो तुम जो भी करो, हाथ का इशारा भी करो... यह हाथ मैंने उठाया, यह हाथ मैं ऐसे ही उठा सकता हूं--यंत्रवत; और यह हाथ मैं जागकर भी उठा सकता हूं। तुम दोनों तरह करके देखना। जब तुम जागकर उठाओगे तब तुम पाओगे कि हाथ के उठने का गुणधर्म और है। हाथ बड़े माधुर्य से उठेगा; एक शालीनता होगी उसमें, क्योंकि होश होगा। और भीतर हाथ बड़ा विश्राम में रहेगा, तनाव नहीं होगा। हाथ ऐसे उठेगा जैसे परमात्मा उठा रहा है; तुम जैसे सिर्फ उपकरण हो। अगर तुमने मूर्च्छा में उठाया, तो हाथ हिंसा के ढंग से उठेगा; उसमें झटका होगा; वह शालीन न होगा। उसमें प्रसाद न होगा, माधुर्य न होगा। और उसके भीतर एक तनाव होगा। जैसे-जैसे तुम जागोगे, तुम पाओगे, तुम्हारा शरीर थकता ही नहीं, क्योंकि जागकर सब चीजें इतनी शांति और माधुर्य से भर जाती हैं, तनाव नहीं रह जाता। इसलिए थकान नहीं रह जाती। जितने तुम सोए-सोए जीओगे, उतना तनाव रहता है। जितना तनाव रहता है, उतने तुम थक जाते हो। थकान श्रम के कारण नहीं आ रही है, तुम्हारी मूर्चछा के कारण आ रही है। इसलिए तो बुद्धपुरुषों को तुम सदा ताजा पाओगे, जैसे अभी-अभी स्नान करके आए हों। उनके ऊपर तुम सुबह की

छाप पाओगे। उनके शब्दों में तुम ओस की ताजगी पाओगे, जैसे सब नया-नया है, सब अभी-अभी है, कुछ भी बासा नहीं है, कहीं धूल नहीं जम पाती। उनकी आंखों में तुम्हें झलक मिलेगी--शांत झील की। उनके सारे व्यक्तित्व में तुम्हें दर्पण की तरह गहराई, अनंत गहराई और अनंत ताजगी... । एक कुआंरापन तुम्हें बुद्धपुरुषों के पास मिलेगा। इसे धीरे-धीरे तुम भी अनुभव कर सकते हो जैसे- जैसे जागो।
इसको ही तुम अपनी साधना बना लोः उठोगे, बैठोगे, बात करोगे, हंसोगे, रोओगे--मगर जागकर करोगे। कभी जागकर हंसना, तुम तत्क्षण फर्क पाओगे। फर्क भारी हैः जब तुम ऐसे ही हंस देते हो मूर्च्छा में, तब तुम्हारा हंसना पागल-जैसा होता है, हिस्टीरिकल होता है। और जब तुम जागकर हंसोगे, तब तुम पाओगे, हंसने का गुणधर्म बदल गया; उसमें पागलपन नहीं है, उसमें एक बड़ी मधुरिमा है। वह तुम्हारी विक्षिप्तता से नहीं आ रहा है, तुम्हारी सजगता से आ रहा है। और तुम्हारे हंसने की हिंसा खो जाएगी, धीरे-धीरे तुम्हारी हंसी मुस्कान में बदलने लगेगी। धीरे-धीरे तुम्हारी हंसी मुस्कान से भी गहरी हो जाएगी। एक ऐसी घड़ी आएगी कि हंसी तुम्हारी मुखाकृति का अंग हो जाएगी। तुम पागल की तरह हंसोगे नहीं, तुम मुस्कराओगे भी न। चौबीस घंटे हंसी का एक भाव, जैसे फूलों की एक गंध तुम्हारे चेहरे को घेरे रहेगी; तुम हंसे हुए रहोगे। जो जानेगा वही जान पाएगा कि तुम कैसे प्रफुल्लित हो! तुम्हारी प्रफुल्लता गहन हो जाएगी, मौन हो जाएगी।
झरने जब उथले होते हैं तो शोरगुल करते हैं। जब नदी गहरी हो जाती है तो कोई शोरगुल नहीं होता। इसलिए तो हमें कुछ पता नहीं कि बुद्ध हंसते हैं कि नहीं, कि महावीर हंसे या नहीं, कि जीसस हंसे या नहीं। पता न होने का कारण यह नहीं है कि वे नहीं हंसे; पता न होने का कारण इतना ही है कि उनकी हंसी इतनी गहरी है कि तुम उसे देख न पाओगे। वह अदृश्य में लीन हो गई है। वे चौबीस घंटे प्रफुल्लित हैं। तुम हंसते हो--चौबीस घंटे दुख में घिरे हुए हो। तुम्हारी हंसी दुख में एक टापू की तरफ होती है--दुख के सागर में एक टापू। बुद्ध की हंसी एक महाद्वीप है; वह चौबीस घंटे है।
साधना तो वही जो अखंड है। जागो अखंडता है। और एक दिन अचानक पाओगे कि रात तुम तो सो गए हो और फिर भी जाग रहे हो। अगर तुमने दिन के हर कृत्य में जागरण को साधा, एक दिन तुम अचानक पाओगे कि शरीर तो सो गया है, तुम जागे हो। कृष्ण उसी को योगी कहते हैं गीता में। जब सब सो जाए, जब सब की रात हो तब भी जो जागा रहे, वही योगी है। निश्चित ही कृष्ण ने ठीक परिभाषा पकड़ी। वही परिभाषा है योगी कीः निद्रा में भी जो जागा रहे। तो जागे में तो जागा ही रहेगा; निद्रा में भी जो जागा है। अखंड है उसके जागने का स्वर।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे। मैं कहता निरमोही रहियो,
तू जाता है मोहि रे।। मोह निद्रा का अंग है; वह एक तरह की नींद है। निर्मोह जागृति की छाया है; वह जागरण का अंग है।
तुम अगर निर्मोही बनने की कोशिश करो, बिना जागने की कोशिश के तो तुम्हारा निर्मोह बड़ा कठोर और पाषाणवत हो जाएगा। अगर तुम निर्मोही बनने की कोशिश करो बिना जागे हुए, तो तुम्हारा निर्मोही होना एक तरह की हिंसा होगी, जबर्दस्ती होगी; निर्मोहिता तो कम होगी, कठोरता ज्यादा होगी। तुम अपनी पत्नी को छोड़ सकते हो, कह सकते हो कि मैं निर्मोही हो गया; लेकिन इस निर्मोह में प्रेम न होगा, घृणा होगी। अगर तुम जागते हो, तो भी तुम निर्मोही हो जाओगे एक दिन; लेकिन उस निर्मोह में परम करुणा होगी, प्रेम होगा। तुम चीजों को तोड़कर नहीं हट जाओगे; तुम हटोगे भी तो भी चीजों को जोड़े रखोगे, और अगर तुम्हारे जागरण से तुम्हारा निर्मोह आया है--तुम्हारी पत्नी भी समझेगी, तुम्हारे बच्चे भी समझेंगे कि इस निर्मोह में कठोरता नहीं है। निर्मोह तो बड़ा मृदुल है, बड़ा प्रीतिपूर्ण है।
इसलिए कबीर या मैं तुम्हें निर्मोही बनने को नहीं कह रहे हैं। इसलिए कबीर ने पहले तो जागने की बात कही कि मैं कहता तू जागत रहियो--फिर कहा कि... मैं कहता तू निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।
जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे। और कबीर कहते हैं, कितने युगों से समझा रहा हूं। बुद्धपुरुष युगों से समझा रहे हैं, हर युग में समझाते रहे हैं। यह कबीर कोई अपने ही बाबत नहीं कह रहे हैं। कबीर जैसे

व्यक्ति जब बोलते हैं तो अपने बाबत नहीं बोलते; वे तो सारे बुद्धपुरुषों के बाबत बोल रहे हैं।
जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारया खोई रे।।
मन वेश्या की तरह है। किसी का नहीं है मन। आज यहां, कल वहां; आज इसका,
कल उसका। मन की कोई मालकियत नहीं है। और मन की कोई ईमानदारी नहीं है। मन बहुत बेईमान है। वह वेश्या की तरह है। वह किसी एक का होकर नहीं रह सकता। और जब तक तुम एक के न हो सको, तब तक तुम एक को कैसे खोज पाओगे? न तो प्रेम में मन एक का हो सकता है; न श्रद्धा में मन एक का हो सकता है--और एक के हुए बिना तुम एक को न पा सकोगे। तो कहीं तो प्रशिक्षण लेना पड़ेगा--एक के होने का। इसी कारण पूरब के मुल्कों ने एक पत्नीव्रत को या एक पतिव्रत को बड़ा बहुमूल्य स्थान दिया। उसका कारण है। उसका कारण सांसारिक व्यवस्था नहीं है। उसका कारण एक गहन समझ है। वह समझ यह है कि अगर कोई व्यक्ति एक ही स्त्री को प्रेम करे, और एक ही स्त्री का हो जाए, तो शिक्षण हो रहा है एक के होने का। एक स्त्री अगर एक ही पुरुष को प्रेम करे और समग्र-भाव से उसकी हो रहे कि दूसरे का विचार भी न उठे, तो प्रशिक्षण हो रहा है; तो घर मंदिर के लिए शिक्षा दे रहा है; तो गृहस्थी में संन्यास की दीक्षा चल रही है। अगर कोई व्यक्त्ति एक स्त्री का न हो सके, एक पुरुष का न हो सके, फिर एक गुरु का भी न हो सकेगा; क्योंकि उसका कोई प्रशिक्षण न हुआ। जो व्यक्ति एक का होने की कला सीख गया है संसार में, वह गुरु के साथ भी एक का हो सकेगा। और एक गुरु के साथ तुम न जुड़ पाओ तो तुम जुड़ ही न पाओगे। वेश्या किसी से भी तो नहीं जुड़ पाती। और बड़ी, आश्चर्य की बात तो यह है कि वेश्या इतने पुरुषों को प्रेम करती है, फिर भी प्रेम को कभी नहीं जान पाती।
अभी एक युवती ने संन्यास लिया। वह आस्ट्रेलिया में वेश्या का काम करती रही। उसने कभी प्रेम नहीं जाना। यहां आकर वह एक युवक के प्रेम में पड़ गई, और पहली दफा उसने प्रेम जाना। और उसने मुझे आकर कहा कि इस प्रेम ने ही मुझे तृप्त कर दिया; अब मुझे किसी की भी कोई जरूरत नहीं है। और उसने कहा कि आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि मैं तो बहुत पुरुषों के संबंध में रही; लेकिन मुझे प्रेम का कभी अनुभव ही नहीं हुआ। प्रेम का अनुभव हो ही नहीं सकता बहुतों के साथ। बहुतों के साथ केवल ज्यादा से ज्यादा शरीर का भोग, उसका अनुभव हो सकता है। एक के साथ आत्मा का अनुभव होना शुरू होता है; क्योंकि एक में उस परम एक की झलक है। छोटी झलक है, बहुत छोटी; लेकिन झलक उसी की है।
आकाश में चांद निकलता है--सागर में भी प्रतिबिंब बनता है, छोटी-छोटी तलैयों में भी प्रतिबिंब बनता है। चांद तो वही है; तलैया छोटी सही, प्रतिबिंब तो वही है। कोई फर्क नहीं है तलैया के प्रतिबिंब में और सागर के प्रतिबिंब में। इसलिए पूरब के मुल्कों ने, विशेषकर भारत ने, इस पर बड़ा आग्रह किया कि एक स्त्री एक ही पुरुष में लीन हो जाए, एक पुरुष एक ही स्त्री में लीन हो जाए। ऐसे एक का प्रशिक्षण होगा।
प्रेम पहला कदम है--एक की शिक्षा का। फिर श्रद्धा दूसरा कदम है कि एक गुरु में लीन हो जाए। फिर प्रार्थना अंतिम कदम है कि एक परमात्मा में लीन हो जाए। प्रेम, श्रद्धा, प्रार्थना--ऐसी सीढ़ियां हैं। तू तो रंडी फिरै बिहंडी--कबीर कहते हैं कि तू तो वेश्या की भांति है। वे शिष्य को कह रहे हैं। और इस तरह अपना ही नाश कर रहा है। सब धन डारया खोई रे। और अपना ही धन खो रहा है--आत्म-धन खो रहा है; अपने अस्तित्व को खो रहा है; अपने को गंवा रहा है।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे। और सतगुरु की निर्मल धारा बह रही है, उसमें तू काया धोने के लिए तैयार नहीं और गंदे डबरों में वासना के, न मालूम कहां-कहां भटक रहा है।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारया खोई रे। सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे।। कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।
और अगर तू सतगुरु की निर्मल धारा में नहा ले, तू सतगुरु जैसा ही हो जाएगा। और जब शिष्य गुरु जैसा होता है, उसी क्षण एक और द्वार खुलता है, जो

आखिरी द्वार है। जब शिष्य गुरु जैसा होता है, तभी परमात्मा का द्वार खुल जाता है।
तो गुरु बड़ा पड़ाव है; वह कोई आखिरी मंजिल नहीं है; वहां रुक नहीं जाना है। मगर वहां से गुजरे बिना कोई आगे नहीं जाता है; वह बड़ा पड़ाव है। और जितनी जल्दी उसमें डूब जाओ, उतनी जल्दी उसके पार हो जाते हो। गुरु के बाद परमात्मा ही बचता है, और कुछ नहीं बचता है। और गुरु के पहले केवल संसार है, परमात्मा नहीं है। गुरु मध्य में खड़ा है; इस पार संसार है, उस पार परमात्मा है। जो गुरु में लीन हो जाता है, वह तत्क्षण परमात्मा की तरफ गतिमान हो जाता है।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे। कहत कबीर सुनो भाई साधो,
तब ही वैसा होई रे।। और कोई अड़चन नहीं है, वैसा हो जाने में; क्योंकि वस्तुतः गहनतम स्वभाव में तुम अभी भी वैसे ही हो, तभी तो वैसे हो सकते हो।
जो तुम हो, वही तो हो सकते हो। जो तुम नहीं हो, वह तुम कभी भी न हो सकोगे।
तुम गुरु के साथ एक हो सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर सदगुरु छिपा है।
तुम परमात्मा के साथ एक हो सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर परमात्मा का आवास है।
कस्तूरी कुंडल बसै!
आज इतना ही।

घूंघट के पट खोल
चौथा प्रवचन

भीजै दास कबीर

सूत्र

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।।

ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आग।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग।।

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं।।

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।
तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।।

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर।
चहुं दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर।।

परमात्मा की खोज में, अंततः वह सौभाग्य की घड़ी भी आ जाती है जब परमात्मा तो मिल जाता है, लेकिन खोजने वाला खो जाता है। जो निकला था खोजने, उसकी तो रूपरेखा भी नहीं बचती; और जिसे खोजने निकला था, जिसकी रूपरेखा भी पता नहीं थी, बस वही केवल शेष रह जाता है। साधक जब खो जाता है तभी सिद्धत्व उपलब्ध हो जाता है।
यह खोज बड़ी अनूठी है! यहां खोना ही पाने का मार्ग है। खोज में अगर तुमने अपने को बचाया, तो तुम भटकते ही रहोगे, पा न सकोगे। इस खोज का आधारभूत नियम ही यही है कि तुम ही हो बाधा, कोई और बाधा नहीं है; और जब तक तुम हट न जाओ--तुम्हारे और परमात्मा के बीच से--तब तक दीवार बनी ही रहेगी। तुम हटे कि परमात्मा तो सदा से था; तुम्हारी दीवाल के कारण दिखाई न पड़ता था। और तुम्हारी दीवाल बड़ी मजबूत है। और शायद तुम परमात्मा को इसलिए खोज रहे हो कि दीवाल को और मजबूत कर लो, तुम अपने को और भर लो। संसार की सब चीजें तुमने अपने में भर लीं, यह परमात्मा की कमी खटकती है। अहंकार को चुनौती लगती है कि अगर किसी ने परमात्मा को कभी पाया है तो मैं भी पाकर रहूंगा। जिसने परमात्मा को चुनौती की तरह समझा और जीवन की अन्य महत्त्वाकांक्षाओं में एक महत्त्वाकांक्षा बनाया, वह खाली हाथ ही रहेगा; उसके हाथ कभी परमात्मा से भरेंगे न; और उसका हृदय सूना ही रह जाएगा; वहां कभी परमात्मा का बीज रोपित न हो पाएगा; और उसके जीवन में वह वर्षा कभी न होगी जिसकी कबीर चर्चा कर रहे हैं।
पहली और आखिरी बात ख्याल रखने जैसी है कि तुम अपने को मिटाने में लगना--वही परमात्मा की खोज है। परमात्मा को खोजने की फिक्र ही छोड़ दो। वह तो मिला ही हुआ है; तुम सिर्फ अपने को मिटा लो। इधर तुमने अपने को साफ किया, इधर तुम खाली घर बने कि उधर परमात्मा का पदार्पण हुआ। इस द्वार से तुम निकले कि दूसरे द्वार से परमात्मा भीतर चला आता है। तुम्हारा खाली हो जाना ही तुम्हारी पात्रता है। तुम्हारा भरा होना ही तुम्हारी अपात्रता है।
इसलिए तो जिन्होंने भी जाना, वे उसके संबंध में कुछ कह नहीं पाते; क्योंकि जानने वाला तो खो जाता है, कहे कौन? परमात्मा के सामने जब तुम मौजूद होओगे, तुम तो रहोगे नहीं--कौन करेगा दावा कि मैंने जान लिया? कौन

लौटकर खबर देगा? कौन लाएगा प्रतिबिंब परमात्मा के? तुम मिट ही जाओगे, लानेवाला नहीं बचेगा। इसलिए तो जो गए, वे खुद तो पा लेते हैं, दूसरों को नहीं जना पाते कि क्या उन्होंने पाया। बड़ी कोशिश करते हैं, लेकिन सब शब्द हार जाते हैं, सब इशारे छोटे मालूम पड़ते हैं। और जो भी वे कहते हैं, कहते ही उनको लगता है, भूल हो गई। जो भी कहा जाता है, वह गलत हो जाता हैं।
लाओत्से ने कहा है, कहो सत्य को, और सत्य असत्य हो जाता है।
शब्द बहुत छोटे हैं, बहुत संकीर्ण हैं; और जिसे भरना है, वह बहुत विराट है। शब्दों में उसे भरा नहीं जा सकता। इसलिए जो भी कहा गया है, वह ऐसा ही है कि जैसे किसी ने रात में उड़ती जुगनू देखी हो, और फिर अचानक किसी सूरज के सामने खड़े होने का मौका आ जाए, तो किस भांति तौलेगा सूरज को? कितने जुगनुओं का प्रकाश सूरज बनेगा? या जैसे कोई आदमी चाहे कि चम्मच को लेकर सागर को नापने बैठ जाए--कब तक नाप पाएगा कि कितने चम्मच जल है सागर में? पर मैं तुमसे कहता हूं कि यह हो सकता है, अगर समय पूरा मिले तो कभी-न-कभी चम्मच से सागर नाप लिया जाए, क्योंकि चम्मच छोटी हो भला, सागर बड़ा हो भला; लेकिन दोनों की सीमा है, दोनों एक ही तल की घटनाएं हैं। तो अगर समय मिले अरबों- खरबों वर्ष का, तो कोई आदमी चम्मच से भी सागर को नाप ले सकता है। सिद्धांततः यह संभव है। लेकिन परमात्मा को तो सिद्धांततः भी नापने की संभावना नहीं है, क्योंकि नापने का उपकरण सीमित और जिसे नापना है वह असीम। सीमित से कैसे तुम असीम को नापोगे? और जो भी तुम नापकर ले आओगे खबर, वह झूठी होगी, क्योंकि असीम फिर भी बाकी है। जो नापने और नापने के बाद भी सदा बाकी है, उसी को तो हम असीम कहते हैं।
इसलिए परमात्मा को लोगों ने जाना तो है, कहा किसी ने भी नहीं। नहीं की कहने की कोशिश नहीं की है, सभी ने कोशिश की है। क्योंकि करुणा कहती है, कहो, जो जाना है वह उनको भी बता दो, जो मार्ग पर भटकते हैं, जो अंधेरे में टटोलते हैं। करुणा कहती है, कहो। लेकिन परमात्मा के अनुभव का स्वभाव ऐसा है कि कहा नहीं जा सकता।
मैं भी तुमसे रोज कहे जाता हूं, और भली भांति जानता हूं कि जो कहना चाहता हूं, वह कह नहीं पाऊंगा। और तुम अगर मुझे सुन-सुनकर इतना ही समझ गए तो बस काफी है, कि जो कहना चाहता था मैं, कह नहीं पाया। अगर मुझे सुनकर तुमने समझ लिया, कि तुम समझ गए वह, जो मैं कहना चाहता था, कह दिया मैंने, तो तुम भटक गए। फिर तुम मुझे न समझ पाए। अगर सुन-सुनकर तुमने समझ लिया कि ठीक, संवाद हो गया, जो मैं कहना चाहता था तुमसे कह दिया, और तुमने पा लिया, तो तुम चूक गए; तुम सरोवर के किनारे आकर प्यासे लौट गए। जो मैं कहना चाहता हूं, वह तो कहा ही नहीं जा सकता। जो तुम सुन रहे हो, वह, वह नहीं जो मैं कहना चाहता हूं। जो मैं कह रहा हूं, वह भी नहीं है जो मैं कहना चाहता हूं। बड़ी दूर की फीकी प्रतिध्वनियां हैं। जो कहना है, वह तो तुम तभी समझ पाओगे, जब तुम भी जान लोगे।
जानना ही एकमात्र उपाय है परमात्मा के साथ, कोई दूसरा और रास्ता नहीं
है जिससे हम उसे बिना जाने जान लें। जानकर ही जाना जा सकता है। कबीर के इन पदों में जिन कठिनाइयों की तरफ इशारा है, उन कठिनाइयों को हम समझ लें। पहली कठिनाईः बुनियादी कठिनाई है कि खोजनेवाला खो जाता है, इसलिए कौन खबर लाए?
मैं तुमसे बोल रहा हूं, लेकिन मैं वही नहीं हूं जो खोजने निकला था। वह
तो खो गया। और अब जो मैं हूं, उसका सब खोजनेवाले से कोई भी नाता-रिश्ता नहीं है; जैसे वह खोजनेवाला एक स्पप्न था और विलीन हो गया। उसमें और मुझमें कोई तारतम्य नहीं है। वह कोई और था, मैं कोई और हूं। वह बिल्कुल अजनबी है। उससे मेरी कोई पहचान ही न रही। वह तो एक छाया थी जो केवल अंधेरे में ही रह सकती थी। रोशनी में वह छाया खो गई। और अब जो मैं हूं, वह बिल्कुल ही भिन्न है। जो खोजने निकला था, वह तो अब नहीं है; और जिसने खोज लिया है वह बिल्कुल ही भिन्न है, उसका खोजी से कुछ लेना-देना नहीं है। यह पहली अड़चन है।
दूसरी अड़चन कि जब खोज पूरी हो जाती है, तो जाननेवाले में और जो जाना गया है, फासला नहीं रह जाता। सब ज्ञान में फासला चाहिए। तुम्हें मैं देख रहा हूं क्योंकि तुम दूर बैठे हो; तुम्हारे और मेरे बीच में फासला है। अगर

तुम करीब आते जाओ, करीब आते जाओ, करीब आते जाओ, तुम इतने करीब आ जाओ कि मेरी आंख और तुम्हारे बीच फासला न रहे, तो फिर मैं तुम्हें देख न पाऊंगा, जान न पाऊंगा। तुम इतने करीब आ जाओ कि बिल्कुल मेरे हृदय में विराजमान हो जाओ, तब तो पहचान बिल्कुल मुश्किल हो जाएगी। और तुम इतने करीब आ जाओ कि तुम मेरा हृदय हो जाओ, तब तो कौन पहचानेगा, किसको पहचानेगा?
परमात्मा की खोज में हम निकट आते जाते हैं, निकटता बढ़ती है, सामीप्य बढ़ता है। जैसे-जैसे समीपता आती है, वैसे-वैसे जानना मुश्किल हो जाता है, जगह नहीं बचती बीच में। और एक ऐसी घड़ी आती है छलांग की, जब या तो तुम छलांग लगाकर परमात्मा में डूब जाते हो, या परमात्मा छलांग लगाकर तुममें डूब जाता है। दोनों घटनाएं घटती हैं। ज्ञान के मार्ग से जो चलता है, वह छलांग लगाकर परमात्मा में लीन हो जाता है। भक्ति के मार्ग से जो चलता है, उसमें परमात्मा छलांग लगाकर लीन हो जाता है। या तो बूंद सागर में गिर जाती है, या सागर बूंद में गिर जाता है और तब कुछ पता नहीं चलता कि कौन बूंद थी, कौन सागर है; कौन तुम हो, कौन परमात्मा है। जरा भी रंचभर फासला नहीं रह जाता। भेद करने की व्यवस्था नहीं रह जाती। परिभाषा नहीं हो सकती। इसलिए तो ज्ञानी उ°ोष कर बैठते हैंः "अहं ब्रह्मास्मिप्; "अनलहकप्, मैं वही हूं; तत्त्वमसि! इस घोषणा के बाद अब किसकी चर्चा करोगे? अब तो परमात्मा की चर्चा भी अपनी ही चर्चा है। अब तो अपनी ही चर्चा परमात्मा की भी चर्चा है। अब तो चर्चा करनेवाला और चर्चित दो न रहे; जाननेवाला और जाना गया दो न रहे। और हमारा सारा जानना दो पर निर्भर है, द्वैत पर निर्भर है। अद्वैत का जानना बड़ी ही अनूठी घटना है। वह आयाम और! और जब दोनों एक हो गए, तो कौन खबर दे, कैसे खबर दे, किसकी खबर दे?
ज्ञानी और ज्ञेय जहां एक हो जाते हैं, वहीं तो परम ज्ञान का जन्म होता है। दोनों किनारे खो जाते हैं, सरिता रह जाती है--अधर में लटकी--न इस तरफ किनारा, न उस तरफ किनारा; बस ज्ञान रह जाता है। और हमने ऐसा कोई ज्ञान नहीं जाना है। हमारा तो सारा ज्ञान ऐसा ही है, जैसे नदी के दोनों तरफ किनारे हैं, दोनों किनारों में बंधी हुई नदी बहती है। कभी-कभी वर्षा में जब बड़ा पूर आता है, बाढ़ आती है, किनारे टूट जाते हैं, नदी उन्मत्त होकर बहने लगती है; लेकिन तब भी पुराने किनारे टूट जाते हैं, नदी नए किनारे बना लेती है, किनारे से मुक्त नहीं होती।
परमात्मा ऐसी बाढ़ है, जहां पुराने किनारे तो टूट ही जाते हैं, नए किनारे नहीं बनते।
परमात्मा का कोई तट नहीं है; क्योंकि तट यानी सीमा, तट यानी अंत। तट पर
ही तो नहीं समाप्त हो जाती है। परमात्मा की कोई सीमा नहीं है, कोई तट नहीं है। वह कहीं समाप्त नहीं होता। और जब तुममें गिर जाती है उसकी धारा, या तुम उसमें गिर जाते हो--जो कि एक ही बात के दो नाम हैं, एक ही घटना के दो नाम हैं--तब कहना मुश्किल हो जाता है।
तीसरी बातः जिन शब्दों से हम कहते हैं, वे बने हैं साधारण कामकाज के लिए। उनमें उतना अर्थ है, जैसे छोटे बच्चों के पास बंदूक होती है खिलौनों कीः आवाज भी करती है, धुआं भी निकालती है, पर किसी को मारती नहीं। वह खिलौना है। उस बंदूक से तुम युद्ध के मैदान पर मत चले जाना। वहां वह काम नहीं आएगी; वहां बुरी तरह मारे जाओगे।
हमारे जो शब्द हैं, वे संसार के लिए बने हैं। परमात्मा के जगत में उन शब्दों की सार्थकता ही कोई नहीं है। परमात्मा के जगत में सभी शब्द असंगत हो जाते हैं, उनकी संगति खो जाती है; जो भी कहो, गलत मालूम होता है; जैसे भी कहो, गलत मालूम होता है; व्याकरण बिल्कुल शुद्ध रहे तो भी सब गलत होता हैः भाषा बिल्कुल शुद्ध हो तो भी सब गलत होता है; कितने ही सुंदर ढंग से कहो तोभी फीका और बासा होता है। क्योंकि, शब्द मन-निर्मित हैं और परमात्मा मन के पार है। शब्द स्वप्न-निर्मित हैं और परमात्मा सत्य है। शब्द माया और संसार के बीच खेल-खिलौने हैं, यथार्थ नहीं हैं। बच्चा भी जब जवान हो जाएगा, खिलौनों को फेंक देगा एक कोने में; उनकी याद भी उसे न आएगी कि क्या हुआ। कभी उन्हीं खिलौनों के लिए लड़ा भी था; कभी उन्हीं खिलौनों के लिए रो-रोकर जार-जार हो गया था; कभी उन्हीं खिलौनों के लिए आंखें सूज आई थीं; कभी पाकर ऐसा नाचा था खुशी से, खोकर रोया था। अब तो याद भी नहीं आती। वे कोने में

पड़े-पड़े अपने-आप धूल-धवांस से भरकर... किसी दिन नौकरानी झाड़कर उन्हें कचरे- घर में फेंक आएगी। बच्चा जवान हो गया, प्रौढ़ हो गया।

जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर परमात्मा की तरफ निकटता बढ़ेगी, एक प्रौढ़ता बढ़ेगी। जिन शब्दों को तुमने बड़ा मूल्य दिया था, जिनके लिए तुम कभी लड़-लड़ पड़े थे--किसी ने हिंदू-धर्म को कुछ कह दिया, या किसी ने तुम्हारे परमात्मा के खिलाफ कुछ बोल दिया, या किसी ने तुम्हारे गुरु की निंदा कर दी--सब शब्द हैं, हवा में बने बबूले हैं; तुमने तलवार खींच ली थी; तुम धर्म की रक्षा के लिए तत्पर हो गए थे; तुम मारने-मरने को उतारू थे; विवाद के लिए तैयार थे; सिद्ध करने के लिए तुमने पूरा आयोजन कर लिया था; शास्त्रार्थ तुम्हारे ओठों पर रहा सदा। यह सब शब्दों का ही जाल है। शब्द में कौन सही, कौन गलत! शब्द में तो सभी गलत, शब्दों में कौन शास्त्र ठीक, कौन शास्त्र गलत, शब्द में तो सभी गलत, सभी शास्त्र गलत। यह खिलौना, वह खिलौना--कुछ चुनाव करने का है? कौन-सा खिलौना यथार्थ? सभी खिलौने खिलौने हैं। कोई खिलौना यथार्थ नहीं है। और पंडित हैं कि लगे हैं शब्दों को घिसने में।
शब्दों का बड़ा ऊहापोह है, बड़ा जाल है। शब्द से ही तुम जीते हो, क्योंकि यथार्थ से तुम्हारे सभी संबंध छूट गए हैं। और यथार्थ परम मौन है। यथार्थ के पास कोई भाषा नहीं है, या मौन ही एक मात्र भाषा है। जब कोई परमात्मा के पास आता है, मौन होने लगता है; जैसे-जैसे पास आता है, वैसे-वैसे गहन मौन उतरने लगता है; रोआं-रोआं शांत हो जाता है; वाणी खो जाती है; मन थिर हो जाता है; भीतर की लौ अकंप जलने लगती है, कोई कंपन नहीं आता। भीतर के आकाश में शब्द की एक बदली भी नहीं तैरती। तब तुम जानते हो।
निःशब्द में जाना जाता है। जिसे निःशब्द में जाना है, उसे शब्द में कैसे कहोगे? निःशब्द तो निराकार है। शब्द तो आकार है। निःशब्द में तो तुमने वह जाना जो है। शब्द में लाकर ही तो वह कहोगे, और शब्द के आते ही संसार आ गया।
चौथी कठिनाईः मन रेखाबद्ध चलता है। मन लकीर का फकीर है। और मन हमेशा विरोध से बचता है। जहां-जहां विरोध पाता है, वहां-वहां मन दो खंड कर लेता है। जन्म को अलग कर लेता है, मृत्यु को अलग कर लेता है। क्योंकि मन की समझ के बाहर है यह बात कि जन्म और मृत्यु दोनों एक हो सकते हैं। जन्म कहां मृत्यु कहां; जन्म, जीवन का दाता; मृत्यु, जीवन की विनाशक! तो मन कहता है, जन्म और मृत्यु एक-दूसरे के विपरीत हैं, एक-दूसरे के शत्रु हैं। जन्म को तो चाहता है मन, मृत्यु से बचना चाहता है। जन्म में तो उत्सव मनाता है, मृत्यु में रोता-पीटता है, दुखी-दीन, जर्जर हो जाता है।
लेकिन जीवन में तो जन्म और मृत्यु जुड़े हैं; एक छोर जन्म है, दूसरा छोर मृत्यु है। वहां तो दिन और रात एक ही चीज के दो पहलू हैं। वहां तो सुबह और सांझ एक ही सूरज की दो घटनाएं हैं। वहां तो सुख और दुख अलग-अलग नहीं हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा के करीब आता है, वैसे ही सबसे बड़ी अड़चन आती है, वह यह कि परमात्मा विरोधाभासी है, पेराडाक्सिकल है। उसमें सब इकट्ठा है। होना भी चाहिए, क्योंकि उससे विरोध में क्या होगा? और उससे विरोध में कोई रहकर रहेगा कहां? और उसके विरोध में होने का उपाय ही कहां है, जगह कहां है, ऊर्जा कहां है? परमात्मा में तो जन्म और मृत्यु आलिंगन कर रहे हैं। मन जब यह देखता है, तो बिल्कुल टूट जाता है। उसका सारा पुराना अनुभव, अब तक की बनाई हुई धारणाएं सब क्षणभर में बिखर जाती हैं। वहां तो रात और दिन एक ही घटना की दो पोशाकें हैं। वहां तो सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और अंतिम अर्थों में, जो कि बहुत कठिन हैः वहां तो संसार और मोक्ष एक ही घटना के दो नाम हैं। तब बड़ी अड़चन हो जाती है।
मन ने बड़ी व्यवस्था से बांधा है, सब चीजों की सीमा बनाई है, कोटियां बनाई हैंः यह संसार है निकृष्ट, त्याज्य; मोक्ष है उत्कृष्ट, पाने योग्य; संसार है छोड़ने योग्य, मोक्ष है पाने योग्य; संसार है ठुकराने योग्य, मोक्ष है अभीप्सा योग्य--ऐसी मन ने सब धारणाएं बनाई हैं।
परमात्मा के जैसे-जैसे निकट तुम आओगे, यहां परमात्मा में संसार और मोक्ष एक ही घटना है। यहां बनानेवाला और बनाई गई चीजें दो नहीं हैं; स्रष्टा और सृष्टि एक है। वहां तुम ऐसा न पाओगे कि यह वृक्ष अलग है

परमात्मा से; तुम इस वृक्ष में परमात्मा को ही हरा होते हुए पाओगे। तुम ऐसा न पाओगे कि यह चट्टान परमात्मा से भिन्न है; तुम इस चट्टान में परमात्मा को ही सोता हुआ पाओगे। तुम शत्रु में भी देखोगे, वही है; मित्र में भी देखोगे, वही है। जन्म में वही आता है; मृत्यु में वही विदा होता है। परमात्मा एक है; वहां सब विरोध लीन हो जाते हैं। जैसे सब नदियां सागर में गिर जाती हैं, ऐसा सब कुछ परमात्मा में गिर जाता है। और तुम्हारे मन ने बड़े इंतजाम से जो कबूतरखाने बनाए थे, जिनमें जगह-जगह तुमने खंड कर दिए थे, चीजों को बांट दिया था, लेबिल लगा दिए थे--उसे लेबिल लगाने को तुम ज्ञान कहते हो--हर चीज का नाम चिपका दिया था, हर चीज के गुण लिख दिए थेः यह जहर और यह अमृत--और अचानक परमात्मा में जाकर तुम पाते हो, जहर अमृत है, अमृत जहर है; सब एक है; कुछ चुनाव योग्य नहीं है--सभी उससे है। बुरा और भला दोनों उसी से आते हैं। संत और शैतान दोनों उसी से पैदा होते हैं। राम और रावण दोनों उसी की लीला के अंग हैं--राम ही नहीं, रावण भी; अन्यथा रावण कहां से आएगा? जैसे ही तुम परमात्मा के पास जाते हो, तुम्हारी सब कोटियां टूटती हैं। मन का सब ज्ञान उखड़ जाता है। परमात्मा भयंकर आंधी की तरह आता है, झकझोर डालता है तुम्हारे सब ज्ञानों को, धूल-धूसरित कर देता है। परमात्मा महान अग्नि की तरह आता है, जला डालता है सब कचरे को, सब शब्दों को, सब सिद्धांतों को, सब शास्त्रों को। परमात्मा ऐसा आता है कि तुम्हें बस नग्न और शून्य छोड़ जाता है। उस घड़ी में तुम जो जानोगे, कैसे वापस कबूतरखानों में रखोगे उसे? जिसने एक बार जान लिया, परमात्मा की एक झलक जिसको आ गई, फिर मन की सारी की सारी व्यवस्था व्यर्थ हो जाती है। उसी मन से बोलना है। उसी मन से कहना है।
इसलिए कबीर कहते हैं "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। प् कैसे कहैं, क्या है उस परमब्रह्म का तेज? कौन सी उपमा दें? किन शब्दों का सहारा लें?
"कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।। प् कबीर कहते हैं, कहने में शोभा नहीं है, बात बिगड़ जाएगी; जो भी कहेंगे वही अशोभन होगा।
इसलिए आस्तिक हमेशा नास्तिक से विवाद में हार जाएगा। लाख उपाय करो, आस्तिक जीत नहीं सकता। आस्तिक हारेगा विवाद में। विवाद में नास्तिक ही जीतेगा। उसका कारण है क्योंकि नास्तिक उस जगत की बात कर रहा है जहां विवाद की सार्थकता है, जहां तर्कसंगत है। आस्तिक अतक््रय की बात कर रहा है, जहां तर्क असंगत है। तो आस्तिक तो हारेगा ही। इसका यह मतलब नहीं है कि कोई आस्तिक नास्तिक से हारकर नास्तिक हो जाएगा। झूठा आस्तिक हारकर नास्तिक हो जाएगा; सच्चा आस्तिक हारकर भी और गहरा आस्तिक हो जाएगा, क्योंकि सच्चा आस्तिक हार और जीत जानता ही नहीं। वह हंसेगा। वह नास्तिक के तर्क से नाराज न हो जाएगा; वह नास्तिक के तर्क से हंसेगा। नास्तिक के प्रति उसे क्रोध न उठेगा, क्योंकि वह तो आस्तिक का लक्षण ही नहीं है; नास्तिक के प्रति महाकरुणा उठेगी। वह नास्तिक को तर्क काटकर सिद्ध करने की कोशिश भी न करेगा। अगर कुछ भी हो सकता है तो एक ही घटना काम की हो सकती हैः वह नास्तिक को प्रेम करेगा। क्योंकि जो शब्द से नहीं कहा जा सकता, अब उसको कहने का एक ही उपाय हैः वह है प्रेम। और जो तर्क से नहीं कहा जा सकता, अब उसको समझाने की एक ही विधि हैः वह करुणा है। और जिसका अब बताने का, विवाद से प्रमाण देने का कोई उपाय नहीं; उसका एक ही उपाय है कि वह खुद ही प्रमाण हो। आस्तिक के पास प्रमाण नहीं होते; आस्तिक स्वयं प्रमाण है। इसलिए अगर आस्तिक को समझना हो तो तर्क से तुम उसके पास पहुंच ही न पाओगे। उसके पास तो पहुंचने का रास्ता है, और वह रास्ता हैः सतसंग। वह रास्ता हैः उसके पास होना, ताकि उसका प्रेम तुम्हें छू सके, ताकि उससे उठती सुवास किसी दिन किसी अन-अपेक्षित क्षण, में तुम्हारे नासापुटों में भर जाए। क्योंकि अन्यथा, कहता हूं अन-अपेक्षित क्षण, क्योंकि अन्यथा तो तुम बहुत सुरक्षित हो। तुमने सब संवेदनशीलता बंद कर रखी है। और आस्तिकता को जानने के लिए तो बड़ी नाजुक संवेदनशीलता चाहिए। वह फूल किसी और लोक का है। वह फूल अदृश्य है। उसकी सुवास अतिसूक्ष्म है, महासूक्ष्म है। अगर तुम संवेदनशील होओगे तो ही थोड़ी सी झलक मिलेगी। उसकी रोशनी ऐसी नहीं है कि तुम्हारी आंखों को चका-चौंध से भर दे; उसकी रोशनी बड़ी शीतल है। अगर तुम आंख बंद करके बैठ

सकोगे आस्तिक के पास, तो ही तुम उसकी रोशनी देख सकोगे, क्योंकि रोशनी आंखों से देखी जानेवाली रोशनी नहीं; उसकी रोशनी तो आंख बंद करके ध्यानस्थ दशा में ही जानी जा सकती है।

"पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।। प् कबीर कहते हैं, शोभा ही नहीं कहने की; कहना अशोभन है। जो कहा नहीं जा सकता, उसे कहकर जो प्रतिबिंब सुननेवालों के मन में बनेगा, वह बड़ा अन्याय है; वह परमात्मा के साथ बड़ा अन्याय है। क्योंकि सुननेवाले कोई प्रतिमा बना लेंगे, जिससे कि परमात्मा का कोई भी संबंध नहीं, दूर का भी नाता-रिश्ता नहीं। वे कुछ और ही समझकर लौट जाएंगे। उनकी समझ एक तरह की नासमझी होगी।

इसलिए ज्ञानी की सारी चेष्टा यह है कि कैसे तुम्हारी आंखें खुल जाएं; नहीं कि कैसे तुम तर्क के द्वारा तृप्त कर दिए जाओ। तर्क से तुम तृप्त भी हो जाओ तो वह तृप्ति वैसे ही होगी जैसे तुम प्यासे थे और पानी के संबंध में किसी ने बहुत तर्क से सिद्ध कर दिया कि पानी है; और उसने सारा पानी का विज्ञान समझा दिया कि पानी कैसे बनता है; उसने पानी का फारमूला, महामंत्र दे दियाः एच टू ओ; उसने बता दिया कि उद्जन के दो कण, अक्षजन का एक कण, तीन कण से मिलकर पानी बनता है। सब बात ठीक है। लेकिन प्यास न बुझेगी। एच टू ओ से कहीं प्यास बुझी है? राम-राम जपने से भी न बुझेगी। वह भी एच टू ओ है। "देखा ही परमान। प् आंख चाहिए!

तो ज्ञानी के पास न तो तर्क खोजने जाना, न प्रमाण खोजने जाना; आंख खोजने जाना।

"एक कहौं तो है नहींप्--अब कबीर अपनी दुविधा कहते हैं। तुम्हारी दुविधा है कि कैसे परमात्मा को जानें; ज्ञानी की दुविधा है कि कैसे परमात्मा को कहैं। जान तो लिया... ।

"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि। प् कहते हैं कबीर, दो कहूं तो गाली हो जाएगी, और एक कहूं तो है नहीं।

दुविधा तुम समझ सकते हो; क्योंकि तुम कहोगे, सीधी-सी बात हैः अगर दो कहना ठीक नहीं तो एक कहने से काम चल जाएगा। यहीं अड़चन है। क्योंकि एक की भी सार्थकता तभी है जब दो होता हो। एक का क्या मतलब होगा अगर दो हो ही न? कम-से-कम दो को परिकल्पित करना पड़ेगा, तभी तो एक में कोई अर्थ होगा। अगर तुमसे पूछा जाए कि दो, तीन, चार, पांच सारी संख्याएं खो गईं, सिर्फ एक संख्या बची--उसका क्या अर्थ होगा? क्या कहोगे तुम जब कहोगे एक? तुमसे कोई पूछ बैठेगा, मतलब? तो तुम्हें तत्क्षण दो को भीतर लाना पड़ेगा; तुम्हें कहना पड़ेगा, जो दो नहीं। लेकिन दो तो है ही नहीं। तो एक भी कहने में कितना सार है? इसलिए तो हिंदुओं ने बड़े श्रम के बाद "अद्वैतप् शब्द खोजा। यह दुविधा के भीतर बड़ी चेष्टा करनी पड़ी। तो, न तो वे कहते हैं, ब्रह्म एक है; न वे कहते हैं, दो है। वे कहते हैं कि इतना समझ लो कि दो नहीं है। अद्वैत का अर्थ हुआः दो नहीं। तो हम साधारणतः कहेंगे, भले मानस, एक ही क्यों नहीं कह देते? ऐसा सिर के पीछे से घुमाकर कान क्यों पकड़ते हो? सीधे क्यों नहीं पकड़ लेते हो? अड़चन हैः एक कहने में डर है, क्योंकि एक में अर्थ ही तब होता है, जब दो की संख्या सार्थक हो। और उस पारब्रह्म के अनुभव में दो की कोई संभावना नहीं है तो जहां दो ही नहीं है, वहां एक की क्या सार्थकता?

"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि। प् और अगर दो कहूं, तब तो गाली हो गई। इसलिए तो कहते हैं, "कहिवे को सोभा नहीं। प् क्योंकि दो से बड़ा झूठ क्या होगा? उस परमात्मा में दो है ही नहीं।

यह सारा अस्तित्व एक ही चेतना का सागर है। रूप अनेक, पर जो रूपायित है, वह एक। रंग बहुत, पर जो रंगा है, वह एक। नृत्य-गान बहुत, पर जो नाच रहा है, वह एक; जो गा रहा है वह एक। अनेकता परिधि पर है, और सुंदर है अपने-आप में। और जिस दिन तुम एक को पहचान लोगे उस दिन अनेकता में भी उसकी ही पायल की झनकार सुनाई पड़ेगी; उस दिन हर फूल-पत्त उसी की खबर लाएगी; हर पक्षी उसी का गीत गाएगा। उस क्षण जो भी हो रहा है, जहां भी हो रहा है, सभी उसका है। अचानक जैसे एक परदा उठ जाता है प्राणों से, सब पारदर्शी हो जाता है, और हर चीज के भीतर से वही खड़ा दिखाई देने लगता है।

पर एक अड़चन है शब्दों में।

"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि। है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।। प् और कबीर कहते हैं, बहुत विचारा, बहुत सोचा, बहुत उपाय बनाए, बहुत तरह से कोशिश की--अब इतना ही कहना ठीक है कि "है जैसा तैसा रहे। प् जैसा है बस वैसा ही है। उसकी किसी से कोई उपमा नहीं हो सकती, कोई तुलना नहीं हो सकती। उसकी तरफ कहीं से भी कोई संकेत नहीं किया जा सकता, कोई अनुमान काम न करेगा।
हम जीवन में उपमा से ही समझते हैं। कोई आदमी कहता है कि मैंने एक बड़ा सुंदर फूल देखा जंगल में, वैसा फूल यहां नहीं होता--तो तुम पूछते हो, कुछ उपमा, वह किसी फूल जैसा हैः गुलाब जैसा, चमेली जैसा, चंपा जैसा? तुम यह पूछ रहे हो कि कुछ तो इशारा दो ताकि मैं अनुमान कर सकूं कि कैसा है। कमल जैसा? आखिर किसी तो फूल जैसा होगा? कुछ तो तालमेल किसी फूल से होता होगा? अगर एक से न हो तो तुम ऐसा कहो कि गंध गुलाब जैसी, रंग चंपा जैसा, रूप कमल जैसा--कुछ तो कहो, तो अंदाज तो लगे।
लेकिन परमात्मा के संबंध में कोई उपमा नहीं; क्योंकि वह अकेला ही है।
उस जैसा बस वही है। इसलिए कहीं से भी तो कोई द्वार नहीं मिलता कि संकेत किया जा सके।
"है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि। प् बस, वह अपने जैसा है। पर यह भी कोई कहना हुआ? यह तो बात वहीं की वहीं रही। कह दिया कि बस अपने जैसा--इससे सुननेवाले को क्या समझ पड़ा? जिसको बताते थे, उसका कौन-सा बोध बढ़ा? कुछ बात न बनी।
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक, आधुनिक विचारक, विट्गंसटीन ने एक वचन लिखा है। विट्गंसटीन की किताबें इस सदी की महत्त्वपूर्ण से महत्त्वपूणें किताबों में हैं। अगर दस महत्त्वपूर्ण किताबें इस सदी की चुनी जाए, तो विट्गंसटीन की किताब उन दस में एक होगी। विट्गंसटीन कहता है कि "दैट विच कैन नॉट बी सैड शुड नॉट बी सैडप्--जो नहीं कहा जा सकता, कृपा करके उसको कहो ही मत। जो नहीं कहा जा सकता, वह नहीं कहा जा सकता--यह भी मत कहो। विट्गंसटीन यह कह रहा है कि इस तरह की बातें कहने रसे तुम कह भी नहीं पाते, दूसरा समझ भी नहीं पाता और बड़ी उलझन खड़ी होती है। तो क्या कबीर, दादू और नानक, और क्राइस्ट, और बुद्ध, और कृष्ण कहना बंद कर दें, विट्गंसटीन की सलाह मान लें? माना कि उनके कहने से बड़ी उलझन पैदा होती है; लेकिन उस उलझन का कष्ट उठाने योग्य है। क्योंकि अगर वे बिल्कुल ही चुप रह जाएं, तो जो कहकर नहीं बताया जा सका, कह-कहकर भी जिसे तुम न समझ पाए, वह क्या बुद्धों के चुप रहने से तुम समझ जाओगे? चुप्पी तो तुम्हारे लिए बिल्कुल ही अनजानी भाषा है। इससे तो तुम्हें भला भ्रांति होती हो, चुप्पी से तो भ्रांति तक भी न होगी। चुप बैठे बुद्ध को तो तुम पहचान ही न पाओगे। और अगर बुद्ध चुप रह जाएं, तो तुम्हारे इस लोक में, कौन लाएगा उसकी खबर जिसकी खबर नहीं दी जा सकती? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हारे हृदय को तीर मारेगा? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हें जगाएगा कि एक यात्रा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हें चौंकाएगा कि यही जीवन नहीं है? कौन तुम्हारी पीड़ा, दुख और संताप में तुमसे कहेगा कि यही सब कुछ नहीं है; हम ऐसा लोक भी जानते हैं जहां कोई संताप नहीं है, कोई दुख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं। कौन तुम्हें खबर देगा मुक्ति की--तुम्हारे कारागृह में?
सच है, विट्गंसटीन ठीक कहता है कि जो नहीं कहा जा सकता, वह न ही कहा जाए। लेकिन फिर भी उचित नहीं है। जो नहीं कहा जा सकता, न ही कभी कहा गया है, उसे कहना होगा, बार-बार कहना होगा। ना-समझी भी पैदा होती हो उससे, तो भी खतरा मोल लेना होगा, जोखिम उठानी पड़ेगी। क्योंकि हजार सुनें, नौ सौ निन्यानबे कुछ भी न समझ पाएं, पर किसी एक के हृदय में कोई तीर चुभ जाता है; अनकहे हुए की भी थोड़ी-सी झलक आ जाती है; एक नई आकांक्षा का जन्म हो जाता है। शुरू-शुरू में बड़ी धुंधली, कुछ भी साफ नहीं; जैसे सुबह का धुंधलका छाया हो-- लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे पैर संभलते हैं, वैसे-वैसे धुंधलका हटने लगता है; जैसे-जैसे आंख संभलती है, देखते-देखते-देखते जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा था, वहां उस अनंत की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।
संत असंभव की कोशिश करते हैं, क्योंकि परमात्मा असंभव है। परमात्मा
से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं, उससे ज्यादा असंभव कुछ भी नहीं। वह चारों तरफ

चौबीस घड़ी मौजूद है, और फिर भी तुम उसे छू नहीं पाते। सब तरफ से तुम्हें उसने घेरा हुआ है, फिर भी तुम्हें उसके स्पर्श का कोई पता नहीं चलता। तो माना कि संतों के वचन विज्ञान की कसौटी पर सही नहीं उतर सकते, उनके वचन बेबूझ रहेंगे, अतक््रय रहेंगे। तर्क की कसौटी पर संतों के वचन कसे नहीं जा सकते, लेकिन इसमें कसूर संतों के वचन का नहीं है, तर्क की कसौटी का है।
एक बाउल फकीर हुआ, जिसकी कथा मुझे बड़ी प्रीतिकर रही है। कोई उससे पूछता है परमात्मा के संबंध में, तो बाउल फकीर इकतारा लिए रहते हैं। किसी ने पूछा है। जिसने पूछा है, वह पंडित है, बड़ा बुद्धिमान है, शास्त्रों का ज्ञाता है। लेकिन बाउल फकीर उसे कुछ जवाब नहीं देता, अपना इकतारा छेड़ देता है। वह थोड़ी देर तो सुनता है; फिर कहता है, "बंद करो। मैं कुछ पूछने आया हूं, इकतारा सुनने नहीं। बहुत इकतारे सुन लिए। प् तो बाउल फकीर खड़ा हो जाता है। नाचना शुरू कर देता है। पंडित के लिए यह बिल्कुल बेबूझ है। वह कहता है, "क्या तुम पागल हो? प् बाउल फकीर का मतलब ही पागल फकीर होता है। बाउल फकीर का मतलब होता हैः बावला। "क्या तुम बिल्कुल पागल हो? मैं पूछता हूं परमात्मा की--मैं पूछता हूं पश्चिम की, तुम चलते हो पूरब। यह नाचने से क्या होगा? प् तो उस फकीर ने एक गीत गाया, और उसने कहा कि तुम्हारी बातों से मुझे याद आती हैः "एक बार ऐसा हुआ कि एक सुनार फूलों की बगिया में पहुंच गया। भूल से ही पहुंचा होगा, क्योंकि सुनार धातु के साथ जीता है। मुर्दा सौंदर्य में उसका रस है--सोना, चांदी, हीरे-जवाहरात! जिंदा सौंदर्य में उसका कोई रस नहीं, जहां फूल खिलते हैं; क्योंकि फूल सुबह खिलते हैं, सांझ मुरझा जाते हैं, सोना सदा सम्हालकर रखा जा सकता है। हीरा हजारों साल तक सम्हाला जा सकता है। मुर्दा सौंदर्य में उसका रस था। लेकिन एक बार भूल-चूक से बगिया में पहुंच गया। माली ने उसे अपने फूल दिखाए। जैसा कि मैं नाचा, जैसे कि मैंने इकतारा बजाया--मैंने तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दिए हैं। माली ने उसे फूलों के संबंध में समझाया, लेकिन उसने कहा कि नहीं, मैं कोई ऐसे माननेवाला नहीं हूं। मैं सुनार हूं, पारखी हूं। उसने अपने खीसे सोना कसने का पत्थर निकाला और फूलों को कस-कसकर देखने लगा। सोने के कसने के पत्थर पर फूल नहीं कसे जाते। और अगर फूल इसमें गलत साबित हुए, कसौटी में न कसे गए, तो फूलों का कसूर नहीं है, कसौटी का कसूर है। उसने फूलों को कसा, पटक दिया, और कहा कि इनमें कोई भी न तो सोना है, न कोई चांदी है। प्
संत की वाणी अगर बेबूझ लगती है तो कसूर संत का नहीं है; तुम जिस मन से उसे कस रहे हो, उस मन का है। जीवन रहस्य है। संत क्या करे? उसकी वाणी में रहस्य प्रगट है। उसकी वाणी वैसी ही है जैसा जीवन का रहस्य है। उसकी वाणी में समाधान नहीं है; उसकी वाणी में समाधि का स्वर है। समाधान का अर्थ है कि तुमने तर्क को समझा-बुझाकर कोई हल खोज लिया। संत ने कोई समाधान नहीं खोजा है; संत ने समाधि खोज ली। उसने रहस्य के साथ जीने का ढंग खोज लिया। अब वह रहस्य को हल नहीं करना चाहता; वह रहस्य को जीता है। पहेली को हल नहीं करना चाहता, क्योंकि वह समझ गया है कि पहेली में ही सौंदर्य है; उसे हल करने में तो सब मर जाएगा। वह किसी पहेली को हल नहीं करना चाहता--न प्रेम की, न प्रार्थना की, न परमात्मा की। उसने तो एक तरकीब खोज ली कि अब वह नाचता है इस पहेली के साथ; इस रहस्य के साथ वह खुद भी रहस्य पूर्ण हो गया। उसने तारों जैसा सौंदर्य उपलब्ध कर दिया। उसने ओस-कणों जैसी, शबनम जैसी ताजगी उपलब्ध कर ली। उसने फूलों जैसी सुवास पा ली। वह पक्षियों जैसा उड़ने लगा है अनंत के आकाश में। उसने रहस्य में तैरना और तिरना सीख लिया। अब वह रहस्य को हल नहीं करना चाहता।
रहस्य को हल करने की जरूरत भी नहीं है। रहस्य को हल करने वाले मनुष्यता के शत्रु हैं। क्योंकि वे हर चीज को हल कर देते हैं। तुम जाओ एक मनस्विद के पास, पूछा कि प्रेम क्या है--वह हल कर देगा। वह बता देगा कि यह क्या है। "यह प्रकृति की चेष्टा है--संतति को पैदा करने की। प् वैज्ञानिक के पास जाओ, शरीरविद के पास जाओ तो वह कहेगा, "यह कुछ भी नहीं है, हारमोन्स हैं। शरीर में स्त्री-पुरुष के हारमोन्स हैं, उन्हीं का सब खेल है। तुम झंझट में मत पड़ना। प् तुम जाओ केमिस्ट के पास। वह बताएगा, वह कहेगा, "शरीर में ऐसे-ऐसे रस पैदा होने के कारण प्रेम की भ्रांति पैदा होती है। प्रेम वगैरह कुछ है नहीं। प्

ये सभी लोग हल करने बैठे हैं। ये सब हल कर दिए हैं। उनके हल के कारण जीवन से सब रहस्य खो गया है। अब सोच लो, कि जब तुम अपनी प्रेयसी को गले लगाओ, तब तुम्हें पता है कि हारमोन कम रहे हैं, और तुम नाहक मेहनत कर रहे हो। हारमोन तुम्हें चला रहे हैं। एक इंजेक्शन हारमोन का और तुम्हारा सब यह प्रेम वगैरह बदल जाएगा।
विवाह करने जाओ और तुम्हें पता है कुछ है नहीं। ये बैंड-बाजे सब धोखा है। असल में जीवशास्त्र कहता है, प्रकृति अपने को पैदा करती रहनी चाहती है; वह तुम्हें उपकरण की तरह उपयोग कर रही है। तुम तो मर जाओगे, तुम्हारे बच्चों को; तुम्हारे बच्चे मर जाएंगे, उनके बच्चों को... । प्रकृति जीवन को बचाए रखना चाहती है, तुमसे उसका कोई प्रयोजन नहीं है। तुम तो एक वाहन हो जीवन के। बैंड-बाजे बेकार बजा रहे हो। जीवन तुम पर चढ़ा है। प्रकृति तुम्हारे सिर पर बैठी है; वह तुम्हें चला रही है।
अगर तुम प्रार्थना के लिए पूछने जाओ तो भी वैज्ञानिक के पास उत्तर हैं। अगर तुम ध्यान के लिए पूछने जाओ, तो अब वैज्ञानिकों ने यंत्र खोज लिए हैं ध्यान के भी। खोपड़ी में इलेक्ट्राड लगाकर वे जांचकर बता देते हैं कि ध्यान हो रहा है कि नहीं हो रहा है। क्योंकि वे कहते हैं कि यह सब तो विद्युत तरंगों का खेल है। अलफा तरंग अगर चल रही हो तो ध्यान है। वैज्ञानिक हर चीज को हल करने लगा है। तुम थोड़ा सोचो, किसी दिन अगर वैज्ञानिक सफल हो गया, उसने सब हल कर लिया, फिर आत्मघात के अतिरिक्त और क्या बच रहेगा? लेकिन वह आत्मघात भी न करने देगा। वह कहेगा, इसको भी हम हल किए देते हैं कि इसका कारण क्या है।
धर्म की यात्रा रहस्य को हल करने की यात्रा नहीं है। रहस्य को जीने की यात्रा है। हल करे ना-समझ। जीवन का क्षण मिला है एक महोत्सव में, निमंत्रण मिला है, धर्म उसमें सम्मिलित हो जाना चाहता है। धर्म नाचना चाहता है चांद तारों के साथ।
कबीर कहते हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता उस परमात्मा के संबंध में, जो तुम्हारे प्रश्नों को हल कर दे। "है जैसा तैसा रहे। प् रहस्य है और रहस्य ही रहेगा, और तुम व्यर्थ हल करने में समय मत गंवाओ; तुम डुबकी लगाओ, तुम डूबो इस रहस्य में, नहाओ, नाच लो। अस्तित्व का यह क्षण उत्सव बना लो। उस उत्सव से तुम परमात्मा से और रहस्य से एक हो जाओगे। वही एक हो जाना समाधि है।
समाधान विज्ञान की खोज है, समाधि धर्म की। दोनों शब्द एक ही धातु से,
एक ही मूल शब्द से बने हैं, लेकिन बड़े दूर निकल गए हैं। विज्ञान कहता है, समाधान क्या है समस्या का; धर्म कहता है, समाधि। तुम समाधान खोजो ही मत। समाधान खोजा ही न जा सकेगा। रहस्य रहस्य ही रहेगा। तुम कितना ही जानते जाओ, और रहस्य के नए परदे उठते जाएंगे। और वही हुआ है। रोज रहस्य के नए परदे उठते गए हैं; रहस्य चुका नहीं है। विज्ञान ने बहुत जान लिया और कुछ भी नहीं हुआ।
अभी वैज्ञानिकों की एक बहुत बड़ी परिषद केनेडा में बैठी और उस परिषद
ने जो प्रस्ताव पास किए, उनमें एक प्रस्ताव बड़ा अनूठा है, जो कि वैज्ञानिकों से कभी भी आशा नहीं है। वह पहला प्रस्ताव है परिषद का, और पहली दफा वैज्ञानिकों ने समझदारी की थोड़ी-सी झलक दी है। पहला प्रस्ताव यह है कि लोग सोचते हैं कि हम बहुत जानते हैं; लेकिन हम जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं जानते। यह बड़ी समझदारी की बात है। विज्ञान अगर किसी दिन इतना समझदार हो गया तो विज्ञान समर्पण कर देगा धर्म की यात्रा में अपना भी।
"है जैसा तैसा रहै, कहै कबीर विचारि। प्
"ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आग। प्
जैसे चकमक में आग छिपी है और अगर तुम्हें चकमक न रगड़ना आता हो तो तुम बैठे रहोगे। चकमक सामने रखी रहेगी, और तुम्हारे घर में अंधेरा भरा रहेगा। और सामने रखी थी आग, लेकिन रगड़ने की कला तुम्हें न आती थी।
धर्म है समाधि, योग है रगड़ने की कला। योग है चकमक को रगड़कर आग को पैदा
कर लेने की विधि। आग तो छिपी है। परमात्मा ही छिपा है सब तरफ, जैसे तेल में तिल छिपा है, जरा निचोड़ने की बात है; जैसे चकमक में आग छिपी है, जरा रगड़ने की बात है।

तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग। कबीर कहते हैं, कहीं और जाना नहीं है। तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग--बस करना इतना ही है कि तू जाग। साईं को नहीं खोजना है, जागना है। और भूल कर के कहीं साई को खोजने मत निकल जाना, बिना जागे; नहीं तो नींद में बहुत भटकोगे, पहुंचोगे कहीं नहीं। क्योंकि--तेरा साईं तुज्झ में। जाते कहां हो खोजने? जितनी दूर निकल जाओगे खोजने उतनी ही उलझन में पड़ जाओगे। परमात्मा को खोजना नहीं है, बस जागना है।
"तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग। प्
"कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहिं। प्
आती है गंध कस्तूरी की भीतर से। नाफा पक गया, कस्तूरी तैयार है। भागता
है पागल होकर मृग, खोजता है, कहां से आती है यह गंध? उसकी नाभि में है कस्तूरी। पर मृग को कैसे पता चले? मनुष्य को भी पता नहीं चलता कि गंध नाभि में है।
तुम्हारे जीवन का स्रोत तुम्हारी नाभि है। तुम्हारे आनंद का स्रोत भी तुम्हारी नाभि है। तुम्हारे अस्तित्व का केंद्र तुम्हारी नाभि है। अगर तुम अपनी नाभि में उतर जाओ, तो तुमने परमात्मा का द्वार पा लिया।
पश्चिम में लोग मजाक करते हैं। पूरब के योगियों को कहते हैं, वे लोग
जो अपने नाभि में टकटकी लगाकर देखते रहते हैं। वहां क्या रखा है? वहीं सब कुछ रखा है।
तुम्हें शायद पता नहीं कि मां के गर्भ में तुम नाभि से ही मां से जुड़े थे। नाभि तुम्हारे जीवन का केंद्र है। वहीं से जीवन-ऊर्जा तुम्हारे जीवन में प्रवाहित हो रही थी। फिर तुम तैयार हो गए, मां की जीवन-ऊर्जा की जरूरत न रही, तो नाल काट दी गई। तुम मां के गर्भ से बाहर आ गए। लेकिन तुम्हारी नाभि से एक अदृश्य नाल अभी भी परमात्मा से जुड़ी है। एक रजतरेखा तुम्हें जोड़े हुए है अस्तित्व से। तुम नाभि से ही जुड़े हो। नाभि में ही तुम्हारी जड़ हैं। न केवल शरीर के अर्थों में तुम नाभि से जुड़े हो। आत्मा के अर्थों में भी तुम नाभि से ही जुड़े हो। जिन लोगों को कभी शरीर के बाहर जाने का अनुभव हुआ है--कई बार हो जाता है, कभी तो दुर्घटना में हो जाता है कि कोई आदमी ट्रेन से गिर पड़ा और उस झटके में उसकी आत्मा शरीर के बाहर निकल गई--तो जिन लोगों को भी ऐसा अनुभव हुआ है दुर्घटना में, या योग की साधना में, या जान-बूझकर जो प्रयोग कर रहे थे शरीर के बाहर जाने का, उन सभी को एक बात दिखाई पड़ी है, और वह यह कि उनकी आत्मा कितनी ही दूर चली जाए, एक रजत-रेखा नाभि से जुड़ी ही रहती है। अगर वह टूट जाए, फिर वापस शरीर में लौटने का उपाय नहीं रह जाता। वह कितनी ही ऊंचाई पर उड़ जाए, लेकिन वह रजत-रेखा बड़ी लोचपूर्ण है, वह खिंचती जाती है। वह कोई पदार्थ नहीं है; वह सिर्फ शुद्ध विद्युत-ऊर्जा है, इसलिए शुभ्र चांदी की भांति दिखाई पड़ता है।
तुम्हारी नाभि में तुम्हारे जीवन का सारा राज छिपा है। इसलिए कबीर ने कस्तूरी कुंडल बसै यह प्रतीक चुना है। और घटना वही घट रही है जो मृग के साथ घटती है। मृग बिल्कुल पागल हो जाता है, टकरा लेता है सिर को जगह-जगह, लहूलुहान हो जाता है। और इतनी मादक गंध आती है, रुक भी नहीं सकता; खोजना चाहता है, कहां से गंध आती है। जितना भागता है उतना ही व्याकुल होता है। और जितना भागता है उतनी ही जगह उसकी गंध व्याप्त हो जाती है। उतना ही और भी दिग्भ्रम पैदा होने लगता है कि कहां से आ रही है, कि पूरब से कि पश्चिम से कि दक्षिण से। क्या करे यह मृग? इस मृग को कैसे समझाएं कि तू बैठ जा, आंख बंद कर ले, भीतर उत्तर--तेरे भीतर ही गंध का राज छिपा है।
तुम भी आनंद की तलाश में कहां-कहां नहीं घूम लिए हो। कितने जन्मों की लंबी यात्रा है। हिंदू कहते हैं, चौरासी करोड़ योनियों में तुम एक ही चीज को खोज रहे हो कि गंध कहां से आ रही है? आनंद कहां से मिलेगा? जीवन का राज कहां छिपा है? परमात्मा कहां है?
और कबीर कहते हैं, कस्तूरी कुंडल बसै। तेरा साईं तुज्झ में, जागिर सकै
तो जाग।
ऐसे घट-घट राम हैं--जैसे कस्तूरी कुंडल के भीतर छिपी है--ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं।

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।। कबीर कहते हैं कि वह जो अक्षय पुरुष है, वही इस सारे अस्तित्व का फैलाव है। यह सारा वृक्ष उसी का है। प्रतीक है कि अक्षय पुरुष जैसे एक अक्षय वट हैः सारा फैलाव एक वृक्ष की भांति है; डार-डार उसी अक्षय पुरुष की निरंजनता फैली है।
निरंजन का अर्थ होता हैः परम वैराग्य। निरंजन का अर्थ होता है, जिसको कोई रंग, रंग नहीं पाता; जो सब रंगों में है, और अनरंगा रह जाता है। निरंजन का अर्थ होता हैः कमलवत; है पानी में और पानी छू नहीं पाता। उस अक्षय पुरुष का यह फैलाव है अस्तित्व--वृक्ष की भांति वही निरंजन एक-एक डार में छिपा है।
पात भया संसार--और ये जो पत्ते हैं, यही संसार है। कबीर यह कह रहे हैं
कि परमात्मा और संसार में फासला नहीं है; ये एक ही चीज के दो ढंग हैं। स्रष्टा और सृष्टि दो नहीं हैं। और पात-पात में भी वही फैला है। तुम उसके ही पात हो। तुम्हारे पत्ते कितने ही अलग दिखाई पड़ रहे हों, तुम में भी वही फैला है। तुम उसके ही पात हो। तुम्हारे पत्ते कितने ही अलग दिखाई पड़ रहे हों, तुम इस भ्रांति में मत पड़ना कि तुम अलग हो। अलग तो तुम उससे जुड़े हो। प्रतिपल श्वांस ले रहे होः श्वास काट दी जाए, एक द्वार टूट गया, एक सेतु मिट गया--कैसे जिओगे? सूरज की किरणें चली आ रही हैं, तुम्हारे रोयें-रोयें को, जीवन को उत्तप से भर रही हैं; सूरज ठंडा हो जाए, तुम कैसे जिओगे? ये तो स्थूल बातें हैं। ऐसे ही सूक्ष्म तल से सब तरफ से परमात्मा तुम्हें सम्हाले हुए है जैसे वृक्ष को अदृश्य जड़ें सम्हाले होती हैं। और वृक्ष पत्ते-पत्ते की फिक्र कर रहा है। तो घबड़ाओ मत कि तुम पत्ते हो और संसार में हो--संसार भी उसी का है। सृष्टि और स्रष्टा दो नहीं हैं; सृष्टि, स्रष्टा का ही फैलाव है।
अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।।
इसे बहुत गहनता से समझ लो, क्योंकि विषाक्त करने वाले लोगों ने बड़ी भ्रांतियां फैला रखी हैं। वे कहते हैं, संसार पाप है। वे कहते हैं, संसार छोड़ने योग्य है, वे कहते हैं, भागो संसार से अगर परमात्मा को पाना है। परमात्मा संसार के कण-कण में छिपा है, और तथाकथित महात्मा समझाए जाते हैं कि भागो संसार से, अगर परमात्मा को पाना है। और अगर संसार में वही छिपा है तो तुम जहां भी भागोगे, तुम परमात्मा से ही भाग रहे हो। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम जहां हो ठीक वहीं उससे मिलन होगा; इंच भर भी यहां-वहां जाने की जरूरत नहीं है। दुकान पर बैठे-बैठे मिलन होगा। दफ्तर में काम करते-करते मिलन होगा। बगीचे में गड्ढा खोदते-खोदते मिलन होगा। घर को, गृहस्थी को संभालते-संभालते मिलन होगा, क्योंकि वही हर पत्ते में छिपा है। ऐसी कोई जगह नहीं है जहां वह न हो।
रवीन्द्रनाथ ने एक बड़ी मधुर कविता लिखी है। लिखा है कि बुद्ध ज्ञानी हुए और वापस लौटे। रवीन्द्रनाथ के मन मंह कहीं न कहीं बुद्ध का घर छोड़कर जाना, कभी जंचा नहीं। रवीन्द्रनाथ को कभी जंचा नहीं। किसी कवि को कभी जंच नहीं सकता। थोड़ा कठोर मालूम पड़ता है, थोड़ा काव्य-विरोधी मालूम पड़ता है, थोड़ा सौंदर्य का विनाशक मालूम पड़ता है। और कवि के लिए तो सौंदर्य ही सत्य है। यशोधरा को छोड़कर भाग गए बुद्ध की प्रतिमा रवीन्द्रनाथ को कभी भायी नहीं। तो उन्होंने बड़ी मीठी कविता लिखी है। वह कविता हैः लौट आए बुद्ध घर, ज्ञान को उपलब्ध होकर, यशोधरा ने पूछा, एक ही बात मुझे पूछनी है और बारह वर्ष तक इसी बात को पूछने के लिए मैं प्रतीक्षा करती रही हूं। अब आप आ गए हैं, ज्ञान को उपलब्ध होकर, अब मैं समझती हूं कि समय आ गया है, मैं पूछ लूं। पूछना मुझे है कि जो तुमने मुझे छोड़कर वहां जंगल में पाया, क्या तुम उसे यहीं नहीं पा सकते थे?
रवीन्द्रनाथ ने बुद्ध को चुप छोड़ दिया है, उत्तर नहीं दिलवाया। पर रवीन्द्रनाथ का उत्तर साफ है, और चुप रह जाने में भी उत्तर साफ है। अब तो बुद्ध भी जानते हैं कि उसे, जो पाया है जंगल में, उसे यहीं पाया जा सकता था। स्रष्टा छिपा है अपनी सृष्टि में। यह सृष्टि ऐसी नहीं है कि जैसे मूर्तिकार मूर्ति को बनाता है, क्योंकि मूर्तिकार मूर्ति को बनाकर

मूर्ति से अलग हो जाता है; या कवि कविता बनाता है, कविता अलग हो जाती है, कवि अलग हो जाता है। कवि तो मर जाएगा, कविता बनी रहेगी। मूर्ति हजारों साल जी लेगी, मूर्तिकार तो चला जाएगा। दोनों अलग हो गए। नहीं, परमात्मा की सृष्टि कुछ और तरह की है। इसलिए हमने परमात्मा के प्रतीक की तरह नटराज को चुना है--नर्तक; मूर्तिकार नहीं, चित्रकार नहीं, कवि नहीं।
परमात्मा नर्तक है, क्योंकि नृत्य और नर्तक को अलग नहीं किया जा सकता। नर्तक चला गया, नृत्य भी गया। तुम नृत्य को नहीं बचा सकते अलग। तुम नर्तक और नृत्य को अलग कहां करोगे? उनके बीच में कोई फासला नहीं हो सकता। परमात्मा नर्तक की भांति अपनी सृष्सिट से जुड़ा है, मूर्तिकार की भांति नहीं। यह सृष्टि उसका ही होना है। यह तुम्हें ख्याल में आ जाए तो तुम व्यर्थ भागने के विचारों से बच जाओगे और तुम जहां हो वहीं खोज शुरू कर दोगे। तुम जिस जगह खड़े हो, वहीं और वहीं हीरा गड़ा है, कहीं और खोजने मत जाओ। मैंने एक बड़ी अदभुत कहानी सुनी है। एक यहूदी फकीर था। उसने रात सपना देखा। एक रात देखा, दूसरी रात देखा, तीसरी रात देखा--तब सपना सच मालूम होने लगा। सपना यह था कि जिस देश में वह रहता था उस देश की राजधानी में एक पुल के पास एक बहुमूल्य खजाना गड़ा है। जब तीन बार, बार-बार देखा और सब चीज बिल्कुल साफ हो गई, नक्शा भी साफ हो गया; एक-एक चीज स्पष्ट हो गई तो मजबूरी में उसे यात्रा करनी पड़ी राजधानी की। वह राजधानी गया, लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ गया; क्योंकि जहां धन गड़ा है पुल के किनारे, वहां चौबीस घंटे पुलिस तैनात रहती है पुल की रक्षा के लिए। तो वह कैसे उसे खोदे? कब खोदे? वहां से कभी पुलिस हटती नहीं। जब दूसरे लोग पहरे पर आ जाते हैं, तब पहले लोग जाते हैं। चौबीस घंटे सतत वहां पहरा है। तो वह राह खोजने के लिए बार-बार पुल पर गुजरता है। एक पुलिसवाला उसे देखता रहा है। आखिर उसने कहा, सुन भाई, तू क्यों यहां बार-बार गुजरता है? आत्महत्या करनी है? पुल से कूदना है? क्या इरादा है? फकीर है, तो दिखता भी है ऐसा कि उदास है और जिंदगी से निराश है, शायद मौका देख रहा है कूद जाने का या कोई और कारण है--बात क्या है? संदेह पैदा होता है? उस फकीर ने कहा, जब तुमने पूछ लिया तो मैं बता ही दूं, क्योंकि रास्ता भी दिखाई नहीं पड़ता कुछ करने का; तुमसे ही कह दूं, शायद तुम्हारे काम पड़ जाए। मैंने एक सपना देखा, तीन बार देखा सतत देखा और इतना साफ हो गया सपना कि मुझे भरोसा आ गया कि होना चाहिए। मैंने सपरा देखा है कि तुम जहां खड़े हो वहां जमीन में बड़ा खजाना गड़ा है। वह सिपाही हंसने लगा। उसने कहा, हद हो गई। सपना तो हमको भी तीन रात से आ रहा है लेकिन यहां का नहीं आ रहा है। एक छोटे से गांव का उसने नाम लिया। फकीर चौंका, वह तो उसका गांव है। एक फकीर के घर में... और वह तो उसी फकीर का नाम है। और जहां वह फकीर बैठकर माला जपता रहता है, वहां खजाना गड़ा है। उसने कहा, तीन रात से हमको भी आ रहा है। मगर सपना सपना है। ऐसे हम तुम्हारे जैसे झंझटों में नहीं पड़ते कि कभी यात्रा करें, उस गांव जाएं। पागलपन में मत पड़ो।
फकीर भागा घर की तरफ कि यह तो हद हो गई। जहां बैठा था, खोजा--खजाना वहां था।
कहानी पता नहीं, सच है या झूठ, पर जीवन में ऐसा ही हैः तुम जहां हो, खजाना वहीं गड़ा है। सपना आएगा--हिमालय चले जाओ, खजाना वहां है। सपना आएगा-- मक्का, मदीना, काशी गिरनारः कई तरह के सपने आएंगे--उनसे बचना। तुम जहां हो, वहीं खजाना है। क्योंकि अगर तुम हिमालय पहुंचे तो हिमालय में जो बैठा है, वह तुमको बताएगा कि हमको तो सपना आ रहा है कि पूना, कि खजाना वहां बंट रहा है।
परमात्मा सब जगह है, इसलिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। तुम जहां हो, जैसे हो, और परमात्मा की उपलब्धि बेशर्त है, अनकंडिशनल है। परमात्मा तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम ऐसा करो कि तब मैं तुम्हें उपलब्ध होऊंगा। क्योंकि जब उसने ही तुम्हें बनाया है तब इससे ज्यादा सुंदर और क्या अपेक्षा हो सकती है? इसे थोड़ा सोचो। अगर परमात्मा ने ही तुम्हें गढ़ा है, तो अब तुम इसमें और सुधार न कर पाओगे। मैंने किसी आदमी को सुधरते नहीं देखा। और मैं हजारों के साथ संलग्न हूं और वे सब सुधार के लिए मेरे पास आते हैं; लेकिन मैंने कभी किसी आदमी को सुधरते नहीं देखा। इससे मैं निराश नहीं हूं; इससे केवल एक सत्य की उदघोषणा होती है कि परमात्मा ने तुम्हें बनाया

है अब तुम उसमें सुधार करने की कोशिश क्या करोगे? कोई सुधार नहीं सकता; परमात्मा से और ज्यादा सुधारने का उपाय भी नहीं हैं। जितना किया जा सकता था, वह कर ही चुका है। उसकी कोई शर्त नहीं है कि तुम ऐसे हो जाओ कि ब्रह्मचर्य ग्रहण करो, कि उपवास करो, कि यह करो, कि वह करो, तब मैं तुम्हें उपलब्ध होऊंगा। वह तुम्हें उपलब्ध ही है--प्रसाद की भांति। प्रसाद में कोई शर्त थोड़े ही होती है। वह देने को राजी है। अड़चन इतनी है कि तुम लेने को राजी नहीं हो। कोई शर्त नहीं है, सिर्फ तुम लेने को राजी नहीं हो। तुम इतने अकड़ से भरे हो कि तुम लेने वाले बनना ही नहीं चाहते--बस, इतनी ही कठिनाई है। और वह एक गहरी मजाक है।
और परमात्मा मजाक कर सकता है, यह बात मुझे बड़ा सुख देती है। क्योंकि मैं किसी गुरु-गंभीर परमात्मा में भरोसा नहीं करता। परमात्मा गुरु-गंभीर होता तो संसार हो ही नहीं सकता। परमात्मा निश्चित ही हल्का और प्रसन्न, प्रफुल्ल, उत्सव--ऐसा कुछ है।
कहावत है अरब में कि जब भी वह किसी को बनाकर संसार में भेजता है तो उसके कान में यह कह देता है कि तुझसे बेहतर आदमी मैंने बनाया ही नहीं। मगर सभी से वह यही कह देता है। और हर आदमी इसी ख्याल में भटकता है। यह एक गहरी मजाक है; और परमात्मा करता है, इससे दुनिया में रस है।
जिस दिन तुम जागोगे, और जिस दिन तुम्हारी यह भ्रांति छूट जाएगी। तुम समझ लोगे मजाक को--उसी दिन तुम विनम्र होकर झुक जाओगे। भेंट तैयार है; जन्मों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारा झुकना भर काफी है। तुम लेने भर के लिए राजी हो जाओ, देने वाला सदा से राजी है।
इस जिंदगी में उलटा हो रहा है, यहां मांगनेवाला तैयार है, दाता कोई भी नहीं। उस दुनिया में ठीक इससे उलटा है। वहां दाता तैयार है, लेनेवाला कोई नहीं। बस तुम अपनी झोली फैला दो। तुम अपने हृदय को खोल कर रख दो, और कह दो परमात्मा से जो तेरी मरजी। जैसे तू रखे, वैसा रहेंगे। जैसा तू चलाए, वैसा चलेंगे। जैसा तू बनाए, वैसा बनेंगे। इसे मैं संन्यास कहता हूं। यह संन्यास की बड़ी अनूठी व्याख्या हो गई; क्योंकि जिसको तुम संन्यासी कहते हो, वह कहता है कि पच्चीस गल्तियां हैं परमात्मा के बनाने में, इनको सुधारूंगा। उसने ऐसा क्यों किया? मैं संन्यास कहता हूं उस घड़ी को, जब तुम सर्वांग रूप से परमात्मा को स्वीकार कर लेते हो कि मैं राजी हूं तेरी रजा में। तेरी मर्जी अब मेरी मर्जी। अब तू जहां बहाए, वहां मैं बहूंगा। तू अंधेरे में ले जाए, तो तैयार हूं। तू संसार में भेज दे, तो मैं राजी हूं। तू मोक्ष में ले जाए, तो मैं राजी हूं। अब मेरी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। इस घड़ी का नाम संन्यास है। इस चित्त-दशा का नाम संन्यास है। और ऐसे अगर तुम तैयार हो, इसी क्षण परमात्मा मिल सकता है। क्योंकि सब जगह वही छिपा है। पात-पात पर उसके हस्ताक्षर हैं। और कबीर कहते हैं, जब तुम ऐसी हालत में आ जाओगे तो क्या घटेगा?
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर। चहुं दिसि दमके दामिनी, भीजै दास कबीर।। फिर सारा आकाश अमृत बरसाने लगता है। जब तुम राजी हो लेने को, तो दाता के अनंत हाथ हैं। इसलिए तो हम परमात्मा के बहुत हाथ बनाते हैं; क्योंकि दो हाथ से देना भी क्या देना होगा? और परमात्मा दो हाथ से दे, बड़ा कृपण मालूम पड़ेगा। इसलिए हम अनंत हाथ बनाते हैं। जब वह देता है तो अनंत हाथों से देता है।
गगन गरजि बरसै अमी--सारा गगन गरज रहा है, अमृत बरस रहा है। बादल गहन अमृत को लेकर घने हो गए हैं। चारों तरफ बिजली चमक रही है। चारों तरफ रोशनी ही रोशनी का सागर है। और भीजै दास कबीर और दास कबीर इस अमृत में नाच रहा है। भीग रहा है; इस अमृत को भी पी रहा है; इस अमृत के साथ एक होता जा रहा है। गगन सदा तैयार है गरजने को, बरसने को। बादल सदा से तुम्हारे सिर पर मंडराते रहे हैं; बिजलियां चमकने को बिल्कुल तत्पर खड़ी हैं; मगर दास कबीर राजी नहीं है। बस दास कबीर राजी हो जाएं, दास हो जाएं--राजी हो गया।
तुम मालिक बने बैठे हो। अहंकार ने सिंहासन पकड़ रखा है--अकड़े हो। तुम्हारी अकड़ के कारण रोशनी तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाती है। अमृत भी बरसा है तो भी तुम्हें छू नहीं पाता। तुम्हारी अकड़ भयंकर है। जो भी

अपनी अकड़ से भरे हैं, वे पहाड़ों की भांति हैं, गड्ढों की भांति हैं, खाली हैं, शून्य हैं--अमृत से भर जाएंगे।
जरा भी देर नहीं है उसकी तरफ से; अगर देर है तो तुम्हारी तरफ से। और कब
तक प्रतीक्षा करनी है? हो जाओ खड़े आकाश के नीचे। बन जाओ दास कबीर। नाचो अहोभाव से! जो उसने दिया है, उसके लिए धन्यवाद दो। और जैसे ही तुमने उसके लिए धन्यवाद दिया, जो उसने दिया है, कि हजारों हाथ से अमृत बरसना शुरू हो जाता है! फिर वह तुम्हें बहुत देता है। क्योंकि अनुगृहीत की ही उपलब्धि हैं। अनुगृह ही उसकी तरफ जाने का मार्ग है।
ये सब प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के भीतर छिपा हुआ इशारा है, उस इशारे
को याद रखनाः
"कस्तूरी कुंडल बसै।"
आज इतना ही।